# श्रृङ्गी ऋषि के राम

महाराजा दशरथ के राजकुमारों के जन्म के पश्चात उनके नामकरण की चर्चा आयीं,जब नामकरण का समय आया तो महाराजा दशरथ, महर्षि वशिष्ठ मुनि के पास पंहुचे और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा - मुनिवर! आपने हमें वेदों का अध्ययन कराया है। जिसमे कहा हैं कि बाल्यकाल में नामोकरण होना चाहिये तो ऋषिवर! नामकरण करके मेरे बाल्यो का नाम घोषित करें,वशिष्ठ मुनि महाराज ने उनकी विनय को स्वीकार कर लिया, क्योंकि वे महाराजा दशरथ के राजपुरोहित थें। प्रत्येक पुरोहित का यह कर्तव्य हो जाता है,कि वह अपने यज्ञमान के द्वारा होने वाले हर क्रियाक्लापों,नामकरण संस्कार इत्यादि को पूर्ण करे। जब महर्षि वशिष्ठ मुनि ने नामकरण करना स्वीकार कर लिया तो ऋषि की पत्नी माता अरून्धती से भी प्रार्थना की गयी, तो उन्होंने भी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उन्होंने महाराजा दशरथ से कहा कि-यह एक बहुत पवित्र कार्य है। इस कार्य में अनेको विद्वानों का होना अति आवश्यक है। अतः आप समस्त राष्ट्रों के सर्वत्र विद्वानों,आचार्यों,बुद्धिमानों को आमंत्रित करें।

महाराजा दशरथ ने उसे स्वीकार कर लिया उसके पश्चात उन्होंने महर्षि काकभुषुण्ड,महर्षि लोमश,महर्षि व्रेतकेतु, महर्षि, महर्षि विभाण्डक, महर्षि श्रृंगी, महर्षि वैशम्पायन इत्यादि अनेको महर्षियों ब्रह्मवेताओं, ब्रह्मचारियों,महाराजाओं को आमन्त्रित करते हुए महाराजा दशरथ ने नामोकरण का उत्सव मनाया।

## नामोकरण संस्कार उत्सव

जब उत्सव मनाने लगे तो उनके आमंत्रण पर महाराजा शिव का भी आगमन हुआ। सभी ऋषियों इत्यादि के आगमन के पश्चात वहां एक महर्षियों,ब्रह्मवेताओं की तथा एक पंक्ति ब्रह्मवर्चोसियों इत्यादि की भी विराजमान हो गयीं,जितने भी ब्रह्मवेता तथा ब्रह्मवर्चोसि थे, महाराजा दशरथ के आमन्त्रण पर सभी विराजमान हो गये, जिनकी गणना भी नही हो सकती थी, मुझे तो ऐसा दृष्टिपात व प्रतीत है कि वेद के वांगमय में

जितने भी तपस्वी थे, सबको महाराजा दशरथ के द्वारा आमन्त्रित किया गया था,आमन्त्रित विद्वानों को स्थान देने के पश्चात महाराजा दशरथ सभा के मध्य में अपने बाल्यों के साथ विराजमान हंए और उदघोष करने लगे कि -भगवन! महषि। वशिष्ठ महाराज जी! यज्ञ का आयोजन कीजीये और महर्षि वैश्मपायन और महर्षि विभाण्डक मुनि से कहा कि-आईये, भगवन! हम आपको पुरोहित के रूप में, ब्रह्मा के रूप में निर्वाचित करते है और ब्रह्मा का आसन ग्रहण करने को कहा। जब ब्रह्मा अपने आसन पर विद्यमान हो गये। तो ब्रह्मा ने महाराज दशरथ से कहा कि-हे महाराज! त‍ुम अपने बाल्यों के नामकरण का उदगीत गाओ औरहमे यह बताओ कि तुम अपने बाल्यो के नामकरण क्या करना चाहते हो तो महाराजा दशरथ ने चारो बाल्यो का नाम राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उनके गुणे को बताते हुए, नामकरण का उदगीत गाया। इसके पश्चात उन आत्माओ से जो शिशु रूप मे थी उनसे अपना परिचय उदगीत रूप में गाने को कहा, तो बाल्यो की आत्माओ ने अपना कोई परिचय नही दिया, तो महर्षियो ने उनका नामकरण पूछा जब, उसका भी कोई उतर न मिला तो ब्रह्मर्षियो ने कहा- हे आत्माओ! हम राम,लक्ष्मण,भरत और शत्रुघ्न के रूप में तुम्हारा नामोकरण उदघोषित करते है। नामकरण के उदघोष के पश्चात यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

## माता अरूनधती का आशीष

यज्ञ की समाप्ति के पश्चात जब बाल्य अपने नामकरण का उच्चारण करने लगे, तो महाराजा दशरथ में महर्षि वशिष्ठ तथा माता अरून्धती से कहा कि-हमारे यहाँ ये जो चारो राजकुमार राजस्थली को प्राप्त हए है,इनका कुछ पूर्व परिचय भी होना चाहिये। तो माता अरूनधती ने कहा कि ये चारो राजकुमार शिशु रूप मे विद्यमान हे और जो शिशु के रूप मे रत्त रहता है। यह आत्मा जो शरीर में भास रहा है वह जो बाल्य रूप से एक रूप मे विद्यमान रहता है। शरीर का अपनी आभा के अनुसार उसका परिवर्तन होता रहता है। आत्मा का कोई परिवर्तन नही होता। माता अरून्धती न कहा कि-हे आत्माओ! तुमने इस राष्ट्र में प्रवेश किया है। तुम्हारी वृतियां इस प्रकार की हों कि यह राष्ट्र उज्ज्वलता को प्राप्त हो। तुम्हारी इस राष्ट्र में सदैव प्रतिभा बनी रहे! तुम राष्ट्र के एश्वर्यो मे परिणीत न हो करके अपने-अपने अस्तित्व को समाप्त न करना शिशु को कर्तव्य होना चाहिये की वह त्याग और तपस्या मे परिणीत हो करके राष्ट्र व समाज का कल्याण और माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाला हों पुनः माता अरून्धती ने कहा कि -आचार्य कुल में प्रवेश हो करके आचार्यो के द्वारा प्राप्त शिक्षा को ग्रहण करके ऐसे ओजस्वी बने की आचार्यो की प्रतिभा में रत्त रहे, आचार्य तथा अपने कुल

को महानता में ले जाये, ब्राह्माण्ड तथा पृथ्वी के गर्भ की चर्चा को जानने वाले हो, महान वैज्ञानिक हो! हे श्रोत्रीय रूप शिशु! तू इन वाकयो को ग्रहण करके अपने में उज्ज्वल बनता चला जा। यह उच्चारण करके माता अरूनधती अपनी स्थली पर विराजमान हो गयी।

## महर्षि वशिष्ठ को उपदेश

तब महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि-इस समय जब इन बाल्यो का जन्म हंआ है, यह वायुमण्डल विज्ञानमयी है, यह वायुमण्डल आध्यात्मिक से तपा हुआ है, आध्यात्मिक के बिना वायुमण्डल पवित्र नही हो सकता। यह आध्यात्मिक, त्याग और तपस्या से भरा हुआ होना चाहिये। बिना त्याग व तपस्या के यह आध्यात्मिक पूर्ण नही हो सकता है। राजा उसे कहते है जो अपनी इन्द्रियों का राजा होता है। राजा प्रजा पर शासन करने वाले को नही कहते। राजा उसे कहते हे जो मन को अपना प्रतिनिधि बना करके इन्द्रियों का उसके वशीभूत का देता है। प्रत्येक इन्द्री उसमे रत्त हो जाती है। उस समय वह अधिराज कहलाता है। मेरी तो अर्न्तातमा यह कहती है कि ये जो शिशु है, इनकी प्रत्येक इन्द्रिया समाहित होती हुई आपस में रत्त रहे, शिशुओ की अन्तरात्मा की पुकार उन्हे प्रेरणा देती रहे, और उनका जीवन में हृदय, आत्मीयता की तरंगे राष्ट्र को सूखद बनाती रहे, वे पूर्ण रूप से राष्ट्र समाज व शरीर को पनपाने वाले रहें। महर्षि वशिष्ठ अपने उन दो शब्दो को उपदेश दे कर अपने पुरोहित के आसन से निचले भाग में विराजमान हो गये, कयोंकि वहां पर दनससे भी बड़े तपस्वी व ब्रह्मवेता विराजमान थे।

## महर्षि विभाण्डक का उदगान

उस समय महाराजा दशरथ ने कहा कि-अब में महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज जी से प्रार्थना करता हूं। वे भी इन बाल्यो के संदर्भ में अपने कुछ उदगीत गायें और अन्तरात्मा की जो प्रतिभा है उसका वर्णन करें। तो महर्षि विभाण्डक जी उपस्थित हुए, उपस्थित हो करके शरणामंगलम गान गाया, गान गाने के पश्चात उन्होने उदगान गाया कि-आज इस सभा में उपस्थित हो करके मेरा अर्न्तात्मा बड़ा प्रसन्न हो रहा है। राजा दशरथ के चार राजकुमारो का जन्म हुआ है, और उनका नामकरण भी घोषित हुआ है। मेरा हृदय तो यह कह रहा है कि आत्मा का कोई नाम नही होता, आत्मा तो एक चेतना है जो सब शरीरो में व्याप्त हो रही है। जब यह आत्मा कहीं वायुमण्डल में भ्रमण करती हुई किसी माता के गर्भस्थल में प्रवेश करती हे तो सर्वत्र देवता

माता के शरीर में प्रवेश कर जाते है। सर्वत्र देवता माता के शरीरो में प्रविष्ट होते हुए, माता-पिता के संकल्प मात्र से पुत्र या पुत्री माता के गर्भ में आते है। आत्मा ने पुत्र होता है न पुत्री होता है और न उसका नामकरण होता है। इस संसार में आने के पश्चात शरीर का नामकरण किया जाता है।

महर्षि विभाण्डक ने कहा-हमारी अन्तरात्मा बड़ी प्रसनन है, इस अयोध्या राष्ट्र में जो राजा हुए है मनु से लेकर सगर इत्यादि इसी वंश में हुए, जिनकी निष्पक्ष परम्परा रही है। उनके राष्ट्रो में वैदिकता का उदघोष रहा है इसी प्रकार इन बाल्यो को ऐसा संस्कार होना चाहिये जिससे यह अयोध्ध्या राष्ट्र पवित्र बना रहे। माता-पिता का कर्तव्य है कि आत्मा को चेतनित करते रहे अपने में अपनेपन की आभा में निहित होते हुए आत्म चिन्तन की और अग्रसर हों। मैने इस संसार का बहुत दृष्टिपात किया है,माताओ का अपने अपने पुत्रो के सनम्बन्ध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रहा है। मेरी प्यारी माता ने यह उपदेश दिया कि तुझे ब्रह्मवेता बनना है, इस संसार के वैभव में नही रहना है मेरी माता यह कहकर शान्त हो गयी थी। वे विचार आज तक हमारे हृदय में प्रतिभाषित हो रहे है, जिससे यह आधत्मिकवाद,उत्पादवाद नाना प्रकार के रूपो में एक रस बना रहें यह वाक्य उच्चारण करके मै अपने हृदय से यह कामना कर रहा हू कि अनकी आयु दीर्घ बनी रहे, जिससे यह राष्ट्रवाद ऊंची आभा में रता होता रहे। यह उच्चारण करके महर्षि विभाण्डक मुनि शान्त हो गयें।

## महर्षि लोमश का आर्शीवाद

महाराजा दशरथ ने पुनः यह अभिलाषा व्यक्त की कि- हम पूज्य महर्षि लोमश जी के विचारो को भीसूनना चाहते है। बहुत समय हो गया है महर्षि लोमश जी के विचारो को श्रवण किए हुए। इनका विचार ऐसी वृतियो में रहता है, जो सदैव आत्म-चिन्तन में लगे रहते है, जो आयु में भी दीर्घ है। महर्षि लोमश मुनि महाराज यह वाक्य रवण करके वहां उपस्थित हुए। महर्षि लोमश मुनि महाराज ने अपना व्यक्तव्य देते हुए कहा कि-जब हमारा संसार में आगमन हुआ था, यदि मै आवागमनवाद पर चर्चा करने लगूं, तो यह जो आवागमनवाद हे, यही तो महान हे। यह आत्मा वायुमण्डल में भ्रमण करता हुआ, अपने चित में मण्डलो में भ्रमण करता हुआ,इन्द्र नाम की जो वायु है,उसमे भ्रमण करता हुआ, आत्मा जब गर्भ में प्रवेश करता है तब यह संसार में आता है संसार में आने के पश्चात, जब जाता हे तो आता भी हे जिसे हम आवागमन कहते है। क्योकि जो जाता है उसी का आवागमन होता है, जो जाता ही नही उसका आवागमन किस प्रकार का, जो गया है उसी को आना हे यही आवागमन कहलाता है। संसारो की जो उयाढ़ी लगी हहुई है, संसारो का जो

सूत्र बना हुआ है, उसी सूत्र में सम्बद्ध हो करके यह आना और जाना लगा रहता है। संसार में जब संस्कार नही रह जाते, तो आवागमन नही होता, इस सन्म्बन्ध में भिन्न ऋषियो ने भिन्न-भिन्न कल्पनाए की है, उनका बड़ा ही विचित्र दृष्टिकोण रहा है। उन्होने तो कहा है कि यह संसार लेन-देन का वयापार बना हुआ है। आत्मा आया हे इस संसार में आवागमन करके तो वह लेने आया हे और देने के लिए भी आया है। किसी से लेता है, किसी को देता है, इस पकार से महर्षि लोमश मुनि का यह विचार है कि यह जो संसार हे यह तो लेन-देन का एक सूत्र बना हुआ है इसमे आन्तरिक और बाहा्र दोनो ही रूप में चित-मण्डल विद्यमान रहता है। मानव के शरीर में आन्तरिक रूप मे भी चित है और बाहा्र-जगत में भी चित है।

चित की विवेचना करते हुए ऋषि ने कहा-जहाँ जन्म-जन्मान्तरो के संस्कार विद्यमान रहते है, इस चित के मण्डल में, जन्म-जन्मान्तरो की प्रतिभा इसमे समाहित रहती है, उसी से तो संसार में आगमन होता है। इसिलिए आगमन न होने के लिए ऋषि-मुनि तपस्या करते है। ऋषि-मुनि अपने में प्रतिभाषित रहते है। वह अपने ऊपर विचारता रहता है, अनुसंधान करता रहता है और अपनी आभा में निहित रहता है। महर्षि लोमश जी ने कहा कि -मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है। मानव समाज भी ऊंचा होना चाहिये, राष्ट्र की पद्धतियो में रूढ़ि नही होनी चाहिये,सामान्य ज्ञान और विवक होना चाहिये, वही मेरा प्रार्थना है। हे शिशुओ! ब्रह्म का चिनतन करते रहना। तुम ब्रह्म-आत्मा हो ब्रह्मात्माओ का जब संसार में आगमन होता है तो कुछ न कुछ क्रियाक्लाप करते है। देवताओ की आज्ञा का पालन करते है, बुरी आत्माओ का हनन करते रहते है। हे शिशुओ! तुम्हारे हृदय में ऐसे संस्कारो की उद्धबंद्धता होनी चाहिये, जिससे वह संस्कार तुम्हारी महानता में परिणीत हो करके, अपने में महान बन करके उज्ज्वलता का एक सूत्र तुम्हारे हृदय में होना चाहिये। इस सन्म्बन्ध में माताओ का बड़ा सहयोग रहा है। माताओ ने ही हमें निर्माणीत किया है जब माता बाल्यकाल में हमारी प्यारी माता सुगन्धिनी, जब हमें लोरियो का पान कराती थी, उस समय उसने सखा रूप मे हमें यह उपदेश दिया कि हे बाल्य! तुम्हे ब्रह्मवेता बनना है, आयु को दीर्घ बनाना है। आयु जब दीर्घ बनती है, जब प्राण और मन का समावेश हो जाता है। प्राण मन को अपने में समाहित कर लेता है।प्राण और मन दोनो एक सूत्र में पिरो करके आत्मा के सानिध्य में उनका ज्ञान ऊर्ध्वा में परिणीत होता रहता है। इसिलिए माताओ का बड़ा उज्ज्वल सेहयोग रहा है। इसके साथ ही मै अपने वाक्य को यहीं समाप्त करने जा रहा हूंकि बाल्य अपने जीवन में कर्तव्य की वेदी को पा करके अपने को उज्ज्वलता को प्राप्त हो! इतना कहकर महर्षि लोमश मुनि अपने स्थान पर विद्यमान हो गये।

## महाराज शिव की अमृत-वर्षा

महाराजा दशरथ ने उस समय कहा-हमारे मध्य मे इस समय महाराजा शिव, जो हिमालय में राजा होते हुए भी जो महान तपस्वी है, इस समय विद्यमान है, उनको भी चरणामृत हमें प्राप्त होना चाहिये। वे हमें एंसा मार्गदर्शन देंगे, जिस मार्ग पर गति करते हुए मेरा राष्ट्र उन्नति की और बढ़ता चला जाये। इस पर महाराजा शिव ने तपस्वियो को नमस्कार करते हुए कहा कि-अयोध्या से मेरा बड़ परस्पर समन्वय रहा है। हिमालय में होते हुए भी पूर्व काल से हमारे यहाँ जो वंशावली रही है, वह अयोध्या का उदगीत गाते हुए कि हमारे यहाँ शिव राजा भी होना चाहिये तो में अपने यहाँ से कृतियो में गमन करता हुआ सभा-मण्डल में पधारा, मेरा सौभाग्य है। क्योकि वास्तव मे यह राष्ट्र नही है, यह कर्तव्यवादियो का एक क्षेत्र है, कर्तव्यवादियो का यह एक वास है। यहाँ जो भी राजा हुआ है, उसने अपने अपने कर्तव्य का पालन किया हे। जहाँ भी कर्तव्यवाद से विहीनता आयी है, वहीं राष्ट्रवाद विनाश की और चला गया है। कर्तव्यवाद की चर्चा में मै भी एक राजा हूं। जो हिमालय में वास करता हूं। अपने में मर्यादा की धर्म की, प्रतिभा में और विज्ञान की महानता में जाता हुआ राष्ट्र ऊंचा उठाना हमारा कर्तव्य है यह मेरा बड़ा सौभाग्य है जो इस नामकरण की आभा में इस यज्ञ मण्डप में मेरा आगमन हुआ। मै बड़ा ही आनन्दित होता हुआ अपनी अन्तरात्मा से हर्ष ध्वनि करता रहता हूँ कि मेरा। मै उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि माताओ ने त्याग और तपस्या से इन इन बाल्यो को जन्म दिया है, यह हम सभी का बड़ा सौभाग्य रहा है। तीनो राज्य-लक्ष्मियो के जब तक गर्भ में बालक पनपते रहे है, इन्होने राष्ट्र को कोई अन्न ग्रहण नही किया है। उस अन्न को ग्रहण करते के लिए तप करती रही है, जिससे मन की उत्पति बाल्यो के हृदयो में जो मन व्याप रहा है, वह पवित्रवत बने, क्योंकि अन्नादं भूतं ब्रह्मः, वेद के महता कहती है कि मन की जो उत्पति होती है, वह अन्न के द्वारा होती है तो इनका अन्न इतना पवित्र रहा है। आगे चल करके ये राष्ट्र त्याग और तपसया में परिणीत होते रहेंगे। माताओ का जो सहयोग रहा है, माताओ का जा त्याग तप रहा है, वह कितना विचित्र रहा है। समय समय मै कैकेयी के द्वार पर आता रहा हूं। कैकेयी ने अपने में निश्चय किया था कि मै उस अन्नादि का पान कर रही हूँ जिस अन्न के द्वारा मेरा यह मन और यह बाल्य जो शिशु के रूप मे पनप रहा है वह मनोवृतियो में रत्त होता रहे। इस प्रकार उनका अप्रतिम ब्रह्मे बड़ा सहयोग रहा है देखे इसी प्रकार का कौशल्या, सुमित्रा इत्यादि की वृतियो में रत्त रहा है। कैकेयी कौशल्या, सुमित्रा तीनो राजलक्ष्मियों अपने में रत्त रहीं है। राजा का भी इस सन्म्बन्ध मे बड़ा तप रहा है जब इनका पुत्रेष्टि यज्ञ हुआ था, उस समय भी मेरा यहाँ आगमन हुआ था। मैने भी महर्षि

श्रृंगी जी से तप को ग्रहण किया था। और इन राजलक्ष्मियो ने भी उन्ही से ग्रहण किया था। पुरोहितो का मन्तव्य बड़ी महानता में रहा है। तो मेरे विचार में यह है कि इस राजाके राष्ट्र में, इस अयोध्या में, पुष्पांजलियां पवित्र होती रहे और पृथ्वी पर जितनी भी कुरूतियां हे उन कुरूतियो का नाश करने वाले बाल्य होने चाहिये। माता की ऐसी शिक्षा हो पिता की ऐसी शिक्षा हो आचार्य कुल में जाएं तो वहा भी ऐसी ही शिक्षा हो। कुरूतिया नष्ट हो और वैदिकता एक दार्शनिक रूप मे रत्त होती रहे। सूर्य जब प्रातः काल उदय होता हे तो शिव कहलाता है इसी प्रकार ये राजा भी शिव के समान कहलाने वाले हो और सबको महानता में रत्त करने वाले हो। त्याग और तपस्या में मेरा बड़ा विश्वनीय जीवन रहा है। मै विचराता रहता हू कि कोई भी राष्ट्र हो समाज हो, मानव उससे तब तक नही बनते जब तक त्यो, तपस्या, प्रदर्शित नही होती। त्याग और तपस्या में मानव जीवन संलग्न हो जाता है तो सब गृह पवित्रवाद की वेदी पर निहित हो जाते हे। मेरे राष्ट्र में भी माताओ के प्रति मेरी बड़ी आस्था रहती है। मै विचारता रहता हूँ कि सबको संसार की लोलुपता में न आ करके अपने अपने कर्तव्य का पालन करना हे। कर्तव्यवाद यही होता है कि माता अपने गर्भस्थल से ले करके, लोरियो और नामकरण तक बाल्यो का महानता के उपदेश और संस्कार से संस्कारित कर दें संस्कार जब बाह्र्र जगत में प्रस्तुत होते है तो कर्तव्यवाद, राष्ट्रवाद के रूप मे उभर कर आते है। मानव अपने में अपनेपन की प्रतिभा का गान गाता रहे, मेरी तो यह कामना हे। इस वायुमण्डल में मुझे ये विचार देने हे, क्यांकि आगे चल कर ये बाल्य इस वायुमण्डल को स्पर्श करने वाले बनेंगें यह उपदेश दे करके महाराजा शिव अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये।

## महर्षि वैश्मपायन के उदगार

राजा दशरथ अपने में हर्ष ध्वनि करने लगे और कहने लगे कि-यह मेरा सौभग्य हे जो ज्ञान और विज्ञान की चर्चाए और नामकरण की चर्चाए तथा विभिन्न प्रकार का हमें उपदेश मिल रहा है। इनही उपदेशो के आधार पर राष्ट्र की परम्परा बनी रहे। यह उच्चारण करते हुए महाराजा दशरथ ने कहा कि-हमारे मध्य महर्षि वैश्मपायन विद्यमान है और उनके साथ अनेको ब्रह्मवेता है जो ब्रह्म की ऊंची-ऊंची उड़ान उड़ते है। अब मै महर्षि वैष्मपायन से चाहता हू कि आप भी अपने कुद उपदेश प्रकट करे।

महर्षि वैश्मपायन उपस्थित हो करके बोले-यह हमारा बड़ा ही सौभाग्य हे कि हम इस आभा में अपने हृदय के कुछ वाकय प्रकट कर सकें। मेरा विचार यह कहता हे कि यह जो परमात्मा है, यह शिशु के रूप मे रहता

हे। परमात्मा ही संसार को इस रूप मे कटिबद्ध करने वाला है। माता के मध्य में, पिता के मध्य में ए बाल्य रहता है, शिशु रूप मे रहता है। माता-पिता की जो हर्षध्वनियां है, जो हर्ष विचित्रताए है। वे उससे संलग्न रहते है। जब माता-पिता का हृदय से हृदयगा्रही समन्वय होता है, उसी के द्वारा यह बाल्य माता-पिता के चरणो में आज्ञाकारी बरन करके संसार को और राष्ट्र को ऊंचा बना सकता है। मेरा अन्तरात्मा तो यह सदैव कहता रहता है। विज्ञान का दुरूपयोग न हो। विज्ञान तो सदैव अपने अपने आसन पर अनूठा रहा है। विज्ञान का विषय तो इतना महान है जिस पर अनेको महर्षियो ने अनेको विद्वानो ने अभी अपना अपना मन्तव्य दिया हैै मै भी उस सन्म्बन्ध में एक यही वाक्य उच्चारण करने वाला हूं। इसी उपलक्ष्य में मै आपके समीप आ करके एक यही वाक्य उच्चारण करने आया हूं। कि विज्ञान इस राष्ट्र में अनूठा बन करके रहें वैज्ञानिक बन करके ये ब्रह्मचारी, विज्ञान में रत्त रहे। जैसे परमपिता परमात्मा ने संसार रूपी जगत को एक विज्ञान शाला में रख दिया है, इस पकार यह भी एक विज्ञान है, एक घारा है, जिसको ला करके यह समाज ऊंचा बनता है। जीवन को के रूपो में रत्त रहते हुए आन्तरिक विज्ञान जब बाह्र जगत में आता है तो विज्ञान का दुरूपयोग नही होता। वह विज्ञान समाज व विशुद्ध में सर्वत्रता में रत्त रहता है। विशेष विवेचना देते हुए केवल यह कि राजा के राष्ट्र मे चिशेष विज्ञान का अनुसन्धान होना चाहिये। विज्ञान, मानव-दर्शन को ऊंचा बनाता है मानव-दर्शन जब विद्यालय में मानव-दर्शन को ऊंचा बनाता है। मानव-दर्शन जब विद्यालय में मानव-दर्शन जब गृह में जब मानव के क्रियाक्लापो में रहता हे तो यही मानव-दर्शन समाज को ऊंचा बनाता है।

## दशरथ का आभार

महर्षि वैश्मपायन यह उपदेश दे करके अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये, तो महाराजा दशरथ न यज्ञ मण्डप का व्याख्यान करते हुए कहा कि-मेरा यह सौभाग्य हे कि मेरे यहाँ ऋषि-मुनियो का आगमन रहा, राष्ट्रवेताओ का आगमन रहा, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है। मेरे चारो राजकुमारो को नामकरण, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुआ है। यह उचचारण करके सभा में उन्होने वेद-मन्त्रो का उदगीत गाया, साम गान गाया। गान गा करके ऋषि-मुनियो की वह सभा विसर्जित हो गयी। (०८ मई १९८७, विक्रम विहार, नयी दिल्ली)

## सप्तम अध्याय-शिक्षा काल

### राम की प्रथम शिक्षक माता कौशल्या

जब मझे वह काल स्मरण आता है तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात आता है जैसे कोई सन्यासी यज्ञशाला में विद्यमान है। वह माता प्रातः कालीन अग्नयाधान करती। सूर्य की किरणो के साथ अपने नेत्रो में ज्योति का प्रकाश ग्रहण करती थी। जब बाल्य गर्भ से पृथक हो गया तो माता कौशल्या प्रातःकाल याग करने लगी। बालक को लोरिया देती रहती थी और उनका वर्चोसी का पठन-पाठन चलता रहता। आत्मा वर्चोंसी है।,अग्नेय है, मानो अग्नयाधान हो रहा है समिधा के द्वारा अग्नि का चयन कर रहे है । उस अग्नि के चयन को कौन कर रहा है अग्नि का चयन माता कर रही है, बालक दृष्टिपात कररहा है। हम मेरी मा! तू कितनी भोली है, तू अपने जीवन को कितना कर्मठ बना सकती है कितना प्रतिष्ठित बना सकती है, तेरे जीवन की धारा महान बन सकती हे! माता कौशल्या ने तीन वर्ष के बाल्य राम को याग की सर्वत्र भूमिका वर्णित करा दी थी और वह तीन वर्ष का बालक वेदो की ध्वनि गा रहा है, अर्थात याग कर रहा है, समिधा के शरा अग्न्याधान कर रहा है। (नवम्बर १९७६, लाक्षा गृह बरनावा)
भगवान राम आठ वर्ष की अवस्था से याग करते थे और वह वेदो को ध्वनि रूपो में गाते थे। एकान्त स्थली पर विद्यमान है, वशिष्ठ के चरणो में है और वेद का गायन चल रहा है रात्रि समय जब भी राम को दृष्टिपात करते ह गान ही गाते दुष्टिपात होते थे। माता कौशल्या का जीवन भी सफल हुआ।
एक समय भगवान राम से महर्षि वर्तेन्तु ने कहा था-हे राम! तुम हर समय गाते रहते हो। इसका कारण कया है? यह विद्या तुमने कहां से प्राप्त की, भगवान राम कहते है कि-माता ने मुझे ने इस योग्य बनाया है। ऋषियो की कृपा से मेरी माता ने मुझे पाया है, मै सदैव उस महान देव का गायन गाता रहता हू जिसने वेद जैसी पवित्र विद्या इस संसार में प्रकाशित की है, उसको पान करता रहता हू, आभा में रमण करता रहता हू उसी में मेरी प्रतिष्ठा बनी रहती है, क्योंकि माता ने मरा निर्माण किया है मझे आभा से युक्त बनाया हे, इसिलिए में सदैव उसको जानने के लिए तत्पर रहता हू। ऋषि वर्तेन्तु मौन हो गये और उन्होने कहा-धन्य है, भगवान राम का जीवन आठ वर्ष से यागिक बना और जब भगवान राम वन चले गये तो वहां भी याग चलता था। समिधाओ के द्वारा अगिन प्रदीप्त हो रही है। परमाणुवाद को शुद्ध किया जा रहा है। (२८ सितम्बर १९८१, घनौरा)

## गुरू वशिष्ठ-आश्रम में शिक्षा

त्रेता के काल में जब भगवान राम वशिष्ठ के द्वार पंहुचे। विद्यालय में जब प्रवेश कराये गये तो भगवान राम को प्रथम वशिष्ठ ने याग की प्रक्रिया वर्णित कराई। राम ने उसी प्रक्रिया को ले करके, उसी याग को ले करके अपने जीवन में षोडश कलाए, जो मानव में सुषुप्ति में रहती है उनको जागरूक करने को प्रयास किया। भगवान राम बारह कलाओ के जानने वाले कहलाते थे और वे बारह कलाए,जिनको धारण करने वाले भगवान राम ने राष्ट्र, समाज और अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास किया।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ राम जिस काल में अध्ययन करते रहते थे, नाना ब्रह्मचारी भोज के समय ऋषि के आश्रम में एक पंक्ति में विद्यमान होकर भोज का पान कर रहे है। एक समय महर्षि श्वेतकेतु महाराज के पुत्र शोभनी ब्रह्मचारी को शंका उत्पन्न हुई। प्रातः काल का समय था, याग के पश्चात उन्होने एक प्रश्न किया-महाराज! हम सब बाल्य एक पंक्ति में विद्यमान होकर भोज का पान करते है। राम का जीवन राष्ट्रीयता में पनपा और हमारा जीवन ऋषि-मुनियो के आ्रगन में भयंकर वनो में पनपा है़ वनो में हमारी वृतिया निहित रही है। हम यह जानना चाहते है कि प्रभु! इन दोनो का समावेश कैसे हो सकता है, एक राष्ट्रीयता है और एक वनचर हे, दोनो को समावेश कैसे हो सकता है ?

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा-हे ब्रह्मचारी! राष्ट्रवाद और वनचर, यह दोनो एक ही तुल्य है, क्योंकि राष्ट्रवादी भी यह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में अनुशासन हो जाये और वनो में रहने वाला ऋषि-मुनि भी यही चाहता हे कि साम्राज्य पवित्र हो जायें दोनो का मन्तव्य एक ही रहता है कि वह अपने मानवीय जीवन पर, मानवीय इन्द्रियों पर जय चाहता है। ब्रह्माण्ड रूपी जो राष्ट्र हे, इसमे में अपना अनुशासन तभी कर सकता हू, जब मेरी प्रत्येक इन्द्रिया अनुशासित हो जाएं। और राजा भी यह चाहता हे कि मरा राष्ट्र पवित्र बनें यदि वह अपने पर अनुशासन कने लगता हे और चाहता कि मेरा इन्द्रियों वर अनुशासन हो और इस प्रजा को कुछ दे संकू, प्रजा को शान्ति की धारा प्रदान का सकूं। दोनो का मन्तव्य एक हे और तब इन दोनो का एकोकीकरण हो जाता है।

वशिष्ठ मुनि ने जब ऐसा कहा तो बाल्य ने कहा कि-प्रभु! क्या इसका कोई प्रमाण है? उन्होने कहा-अनुशासन तो अपने में स्वतः ही प्रमाण कहा जाता है। ब्रह्मचारी कहते ही उसे है जो अनुशासन में रहता है। ब्रह्मचारी मृत्यु से पार हो जाता है, वह मृत्युंजय बन जाता है। ब्रह्मचारी और आचार्य दोनो का एक ही मन्तव्य रहता है। आचार्य चाहता कि मेरा ब्रह्मचारी संसार मे ऊर्ध्वा को प्राप्त होता रहे। आचार्य और ब्रह्मचारी दोनो एक

दूसरे में पूरक कहलाते है। आचार्य और ब्रह्मचारी दोनो एक स्थली में पर विद्यमान है।, एक का स्थान ऊर्ध्वा में है और एक का ध्रुवा में चरणो में है, क्यांकि ध्रुवा वाले को ऊर्ध्वा में जाना है, इसीलिए ब्रह्मचारी आचार्य के चरणो में विद्यमान होता है। जब आचार्य शिक्षा देना प्रारम्भ करता हे तो वह कहता है कि तुम अनुशासित हरो।

## विष्णु स्वरूप की व्याख्या

एक समय शोभनी और भगवान राम को प्रातः कालीन एक वेद-मन्त्र का अध्ययन करायां वेद-मन्त्र था विष्णु व्रतं देवं ब्रह्माः विष्णु रेवकृतं ब्रह्माः वाचः सर्वं व्रवहः अन्तरिक्षम लोकां वाचचो सम्ीवा, इस वेद मन्त्र का उन्हाने उच्चारण किया और कहा कि -जाओ इसका अध्ययन करो, इसको कंठस्थ करो और कंठस्थ करके इसके भावार्थ रूप को जानने का प्रयास करो। शोभनी ब्रह्मचारी और भगवान राम दोनो एक स्थली पर विद्यमान होकर इसका इध्ययन करने लगें कही विष्णु का अर्थ ध्रुवा था, कही आत्मावासी कहा जा रहा था, कही वह विष्णु राष्ट्रीयता में राजा बन रहा था, कही ऊर्ध्वा में जाने वाले लोक-लोकान्तरो में विष्णु की विवेचना हो रही थी, कहीं ध्रुवा म विष्णु की विवेचना आ रही थीं। वह विचार-विनिमय करते रहे, दिवस-समय समाप्त हो गया, परन्तु वह अपने में निपटारा नही कर सके तो मध्यरात्रि में दोनो ब्रह्मचारी आचार्य के चरणो में विद्यमान हो गये। ऋषिवर निद्रा में तल्लीन थे। दोनो उसी वेदमन्त्र के ऊपर चिन्तन-मनन करते रहे।

कुछ समय के पश्चात महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जागरूक हो गये। महर्षि वशिष्ठ मनि ने कहा कि -हे ब्रह्मचारियो! मध्य रात्रि में तुम्हारा मेरे कक्ष में आने का मन्तव्य कया है, उन्होने कहा कि -प्रभु! हम इसलिए आये है कि यह जो अपने हमें वेद मन्त्र वर्णन कराया है इसके पठन-पाठन की शैली भी बड़ी विचित्र है। हम इसके अंतिम छोर पर नही पंहुच सके है, क्योंकि की तो यह वेद मन्त्र राजा का वाची विष्णु उच्चारण कर रहा है, कही पालन करने वाला ही यह विष्णु कहलाता है, कहीं विष्णु सूर्य को कहा जा रहा है, कहीं आत्मा का वाची विष्णु कहलाता है। हमें प्रभु! कहीं राष्ट्रवाद ही विष्णु है, कहीं यज्ञोमयी विष्णु हे, कही यही विष्णु हमें विज्ञान मे ले जाता है। इसके ऊर्ध्वा स्वरूप को हम अच्छी प्रकार नही जान पाये हैं। इसका हमें वर्णन कराईये।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने राम और शोभनी ब्रह्मचारी से यह वाक्य श्रवण करके कहा कि -यह विष्णु

शब्द जब अनुशासन का वाची बनता है तो इस शरीर में विद्यमान होने वाली जो एक चेतना है, एक आत्मा है यह आत्मा ही विष्णु कहलाता है यह आत्मा विष्णु के रूप मे विद्यमान है। विष्णु नाम आत्मा का इसलिए वाची हे क्योंकि वेदो का अध्ययन करता हंआ यह मानव विष्णु रूप को जान जेता है। वेद में एक और मन्त्र आता है विष्णु ब्र्रह्मवचाः ब्रह्मं वर्चं ब्रह्मे कमल कृत्यं ब्रही अतम लोकाम कि यह आत्मा अनुशासन में होता हुआ, वेद का अध्ययन करते हुए ब्रह्म की उपाधि को प्राप्त कर लेता है। जब याग होते है तो वेद का पठन-पाठन करने वाले को ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती हे। वह वेद के मर्म को जानने वाला ब्रह्मवर्चोसी कहलाता है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने एक वाक्य और कहा कि-वही आत्मा जब विष्णु पद को प्राप्त करना चाहता है। तो योगाभ्यास करता है। यह कुम्भक में ब्रवुतं देवाः जब अपनी वुतियो को जागरूक बनाना चाहता है तो यह प्राण को मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र मेनले जाता है। नाभि चक्र में जब यह विद्यमान होता हे तो नाभि का ऐसा स्वरूप बन जाता है जैसा कमलसयं ब्रह्मास कमलं वृहे वृतं देवां वेद की आख्यिका यह कहती हे कि जैसे कमल का पुष्प होता है, उसी की भांति उसका स्वरूप बनता है◌ं मनस्तव, प्राणत्व और आत्ममनस्तव जब इसके ऊपर व्रत्यो मे परिणीत होते है। तो वहां एक गति उत्पन्न होती है। तो यह कहते हे कि उस कमम मे ब्रह्मा या वेद की जो धाराए है, उनका जन्म हो जाता हे उनका जन्म हो करके ब्रह्मणं ब्रहे वृतम वह विष्णु बन करके, ब्रह्मा बन करके वही आत्मा अपने में ब्रह्म पद को प्राप्त करके, वेदो के मर्म को और नाभ्याम-योग के कर्म को जानने लगता है।

यह वाक्य जब उन्होने वर्णन किया तो भगवान राम ने उपस्थित होकर कहा कि- हे प्रभु! क्या नाभि केन्द्र में कमल-डंड उत्पन्न हो जाता है? वशिष्ठ मुनि ने कहा- हां ऐसा वेद की कुछ आख्यिका स्वीकार करती है। राम बोले कि-प्रभु! नाभि में कमल को होना किस लिए अनिवार्य है? उन्होने कहा कि यह नाभि हमारे इस शरीर का मध्य भाग कहलाता है कमल डंडी के मध्य में ही नाना पंखुड़िया अपनी अपनी स्थलियो पर ऐसे वृतित हो जाती हे जैसे नाभि में प्राण का स्थिर रहना और मन की पुट लगाना, यह दोनो एक ही तुल्य कहलाती हे। योगाभ्यास सम्वृहे यही पराकाष्ठा वाला अनुशासन है, जिनको करने से मानव आत्मपद प्राप्त होता है, आत्मा को साक्षात्कार कर लेता है और अपने में अपनी ही प्रतिभा का दर्शन कर लेता है।

## विष्णु राष्ट्र

राम बोले कि-हे भगवन! दूसरा विष्णु का वाची जो राष्ट्र है, मुझे इसका कुछ वर्णन कराईये। महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि -राजा जब अपने राष्ट्र में स्थिर होता है तो नाना ऋषि मुनि, ब्राह्मणजन, ब्रह्मवेता उसको राजा की चुनौती प्रदान करते है जिस समय बुद्धिमानो के द्वारा, बुद्धिजीवी योगियो के द्वारा, निष्पक्ष प्राणियो के द्वारा राष्ट्र का निर्माण होता हे तो वह राजा महान और पवित्र कहलाता है। वह राजा चार प्राकर के नियम, प्रजा के सुख आगर आनन्द के लिए निर्माण करता है। चार प्रकार की नियमावली स्वतः राजा रूपी विष्णु के चार भुज कहलाते है। जब राजा दशरथ का निर्वाचन हुआ था तो उसमे महर्षि वशिष्ठ, महर्षि कपिल, महर्षि वैश्मपायन और महाराजा शिव, श्वेती, देवर्षि नारद और महर्षि श्रृंगी आदि ऋषियो ने राजा का निर्वाचन किया था। वह सप्तहोता कहलाते है। यह सात ऋषि जो वास्तव में राजा का निर्माण करते है, वे ब्रह्मवेता होते है और यह जानते है कि ब्रह्मवेता ही राजा की प्रतिभा को जन्म देते है। वह कहते है कि हे राजा! तुझे ब्रह्मवेता बनना है, क्योकि ब्रह्मवेता ही राष्ट्र का पालन कर सकता है राष्ट्र को ऊंचा बना सकता हे, प्रजा को ज्ञान दे सकता है। और अपने में अपने पन को प्राप्त होता हुआ वह ओजस्वी बन करके राष्ट्रीयता में ओज और तेज स्थापना करता है।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा-हे राम! प्रथम वाची विष्णु आत्मा को कहा जाता है और दूसरा वाची विष्णु राजा को कहा जाता है राजा की चार प्रकार की नियमावली होती है। इन नियमावलियो के नाम विष्णु के चार भुज कहलाते है। पदम राजा का सबसे पथम नियम हे, द्वितीय नियम गदा है, चक्र है और चतुर्थ शंख कहा जाता है। यह चार भुजो वाला विष्णु कहलाता है।

## पदम

महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मचारियो को एक पंक्ति में विद्यमान करके विष्णु के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि -पदम अकृतं ब्रह्मः हमारे यहाँ चरित्र और मानवीयता को पदम कहते है। राजा के राष्ट्र में इतना भव्य चरित्र होना चाहिये जिससे मेरी पुत्री राष्ट्र के एक छोर से द्वितीय छोर तक चली जाये, सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण करे तो उसे माता, पुत्री और भौजाई की दृष्टि से अवगत कराने वाला समाज होना चाहिये। इसी प्रकार वह कन्या भी राष्ट्र में माता बन कर ही भ्रमण करे। इस प्रकार का ज्ञान-विवके राजा के राष्ट्र में होना चाहिये। हे ब्रह्मचारियो! सबसे प्रथम राजा के यहाँ पदम होना चाहिये,पदम कहते हैं, जहाँ प्रत्येक मानव दर्शन की चर्चा

करने वाला हो। विचारो की पंखुड़ियां बना करके नाना प्रकार की ऊंची-ऊंची उड़ान उड़ने वाला समाज होना चाहिये। राजा के राष्ट्र में इसी पदम के आधार पर विज्ञान होना चाहियं। भोतिक विज्ञान बड़ा अनूठा है, कयोंकि पृथ्वी के गर्भ को जानना, अन्ततिरक्ष में गर्भ को जानना दिशाओ के सर्वत्र रूप के जानने का नाम विज्ञान कहा जाता हैं यह विज्ञान केवल पदम-वृतियो में आता है।

## गदा

वशिष्ठ मुनि महाराज नेकहा कि-विष्णू के राजा, के, द्वितीय थुज में गदा होनी चाहिये। गदा का अभिप्रायः हे कि राजा में दंड व्यवस्था बड़ी विचित्र होनी चाहिये। उसे प्रथम ज्ञान के द्वारा शिक्षा देनी चिहये। यदि वह ज्ञान से भी उपराम होता हे और उसको स्वीकार नही कर रहा है तो राजा के यहाँ दंड-व्यवस्था रूपी गदा से उसे दंडित करना चाहिये। वह दंडित करना मानो, प्रजा को अनुशासन में लाना है। वेद का आचार्य कहता है धर्मज्ञ गतं ब्रहे राष्ट्र दा मंगल वृति वृतः देवाः कि समाज में एक दूसरे को भय की प्रतीती नही होनी चाहिये। उनमे सदैव निर्भयता रहनी चाहिये। निर्भयता तब रहती है, जब मानव ईश्वरवादी होता है, परमपिता परमात्मा को अपना साक्षी बनाता है, वही संसार में निर्भयता की आभा में रत्त रहता है। वह निस्संकोच भ्रमण करता है पापाचार नही करता है, वह अपने शरीर रूपी राष्ट्र का निर्माण करता है और बाह्य-जगत में दोनो का समन्वय जो करना जानता है, वह गदा का अधिकारी है। पापाचारियो को दंड देनो वाला हो, यही गदा का अभिप्रायः है।

## चक्र

वेद के ऋषि ने कहा कि-तृतीय भुज में चक्र आता है। मानवीयता अथवा असकी वाणी में जो तेजस्व है, उसको हमारे यहाँ चक्र कहा जाता है। जब हमारा चरित्र कमल की प्रतिभा के समान अपने में परिणीत रहेगा तो उसके पश्चात मानव चक्र को अपनाता है।संस्कृति के प्रसार करने को चक्र कहते है। संस्कृति मे विज्ञान हो,मानव-दर्शन हो गयो की प्रतिभा हो, वही राष्ट्र का उत्थान कर देती है। वह संस्कृति जिसमे मानवता हो, चरित्र हो जिसमे अश्लीलता न हो, उसके नाम हमारे यहाँ चक्र कहा जाता है।

चक्र कई प्रकार के होते है। एक सुदर्शन-चक्र भी होता है। वह द्वापर के काल में भी था, राम के काल में भी था। यह एक यन्त्र बन कर रहा, वैज्ञानिको के कुल में उसकी प्रतिष्ठा रही है। विष्णु-चक्र का अभिप्रायः

केवल राजा की संस्कृति का चयन है। आत्म-तत्व से समन्वय होना चाहिये, जिससे द्वितीय राष्ट्र उसको अपनाता हुआ निस्संकोच अपने में अपनेपन को प्राप्त करता चला जाये। संसार में राजा के राष्ट्र में चरित्र हो,क्योंकि राजा विष्णु है और विष्णु उसे कहते है।, जिस राजा के राष्ट्र में चरित्र या पदम, गदा और चक्र होता है। संस्कृति का प्रभाव अपने में विचित्र माना गया है।

## शंख

महर्षि वशिष्ठ ने कहा, हमारे यहाँ विष्णु के चतुर्थ भुज में शंख माना गया है। वेद-ध्वनि करने वाले बुद्धिजीवी पुरूष राज्य में होने चाहिये। विद्यालयो में आचार्यजन द्वारा ब्रह्मचारीजन को अध्ययन कराने की विचित्र शैली रहनी चाहिये। उनकी शैली मे एक महानता का दर्शन होना चाहिये। मानो उस शंख को अपनाता है।, ध्वनि को अपनाता है। नाद को शंख कहते है। शंख जब अपने मे ध्वनित होता हे ता वह नाना प्रकार के दूषित वायुमंडल को समाप्त करना प्रारम्भ कर देता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने एक वेद-मन्त्र का उदघोष करते हुए कहा कि-राजा के राष्ट्र मे ़शंख-ध्वनि होनी चाहिये। शंख-ध्वनि का अभिप्रायः यह कि यहाँ ऐसा-ऐसा पांडित्व होना चाहिये जो नाना प्रकार का गान गाने वालो हो। जैसे जटा-पाठ है, धन-वाठ है, माला-पाठ है,विसर्ग-पाठ है,उदात और अनुदात है। नाना प्रकार की वेद-मन्त्रो की ध्वानियो में ध्वनित होता हुआ मानव स्वर संगम में प्रवेश कर जाता है।

## वेद

गान-वेद के ऋषि ने कहा वेद का पठन-पाठन करने वाला बुद्धिजीवी प्राणी जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर गान गाता हे तो उदान से प्राण को समान में लाता है और उसी प्राण का अपान से समन्वय करता है, अपान का जब व्यान से समन्वय करता है, और हृदय से गाता है तो हिंसक प्राणी भी अहिंसा में परिवर्तित हो जाता है। जब राजा यह विचाराता है कि मेरे राष्ट्र में बुद्धिजीवी पुरूष होने चाहिये, बुद्धिमान होने चाहिये जिससे मेरा राष्ट्र ध्वनित हो जाये वेद मन्त्रो की ध्वनि में ध्वनित होता हुआ, वेद-मन्त्रो का गान गाने वाला समाज हो और ध्वनि में ध्वनित होता हुआ,वेद मन्त्रो को गान गाने वाला समाज हो और ध्वनि अग्नि की धाराओ पर विद्यमान होकर अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो जाती हे ़ आगे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे-राजा के राष्ट्र में जितना बुद्धिजीवी प्राणी होगा उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा, जितने राजा के राष्ट्र में तपस्वी

प्राणी होंगे,वेद का गान गाने वाले तपस्वी प्राणी हांगे,योगेश्वर हांगे,उतना हीराष्ट्र पवित्र होगा। मेरी पुत्रियां, मेरी माताए विदुषी बनकर उनके गर्भ से ऊर्ध्वा में सन्तान का जन्म होगा।

गान और राग-वशिष्ठ मुनि महाराजा अपना वाक प्रकट करके जब मौन होने लगे तो शोभनी ब्रह्मचारी ने कहा कि -प्रभु! मै ये जानना चाहता हूँ कि शंख-ध्वनि का केवल आपका यही मन्तव्य है कि राजा के राष्ट्र में गान गाने वाले हों, गान कितने प्रकार के होते है, ऋषि ने वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए वर्णन किया कि गनधर्वगानं ब्रहे वाचं ब्रह्मः दीवस्ततं ब्रह्मे वाचः जल। वृतां देवं ब्रह्मः ऋषि ने कहा कि-गान गाने वाले कई प्रकार के होते है। एक गान गाने वाला जब उदान में प्राण को वृत करके गान गाता है तो वह दीपावली गान में परिवर्तित हो जता है।वही जब शीतली प्राणयाम करके प्राण, अपान और उदान तीनो का समन्वय करके गान गाता है तो वह मल्हार-वृति राग बन जाता हे ॒ रागो की बड़ी-बड़ी प्रतिभाए मानी गयी है। एक गान वह होता है, जो यज्ञशाला में विद्यमान है अपनी स्वर-ृतियां और नाभि का स्वर, इन दोनो का मिलान करता हुआ मानव स्वरो में गाता है तो गान की प्रतिभा विचित्र बन जाती है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि -राजा के राष्ट्र में जब इस प्रकार के विचारक पुरूष होते है, इस प्रकार के गान गाने वाले होते हैं। तो शंख-ध्वनि पवित्र बन जाती है और ध्वनित होता हुआ प्राणी उसमे लय हो जाता है। उन्होने कहा कि हमारे यहाँ बहुत से ऐसे राजा हुए है जिनके राष्ट्र में गान-विद्या बड़ी विचित्र रही है। शोभनी ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु मै जानना चाहता हूँ कौन सा ऐसा राजा हुआ है जिसके यहाँ गान और राग की प्रतिभा रही है। उन्होने कहा कि पुष्कर के राज्य में प्रायः मल्हार राग और दीपावली गान गाने की बड़ी विचित्रता रही है। उस विचित्रता में प्राणो को ब्रह्मरन्ध्र में लाकर जब गान गाया जाता हे तो दोनो एक-दूसरे के पूरक बन करके निल्हाद मस्तिष्क में अग्नि का जब संचार होता है तो दीपक अपने में प्रकाशित हो जाते हैं जैसे विज्ञानवेता अन्तरिक्ष में से अग्नि और जल के परमाणुओ का निमाल लेता है और उन दोनो प्रकार के परमाणुआ से भिन्न-भिन्न प्रकार के यन्त्रो का निर्माण कर लेता है, इसी प्रकार मानव भी इस प्राण के द्वारा नाना प्राकर की गान-विद्या की वृतियो का अपने में प्राप्त कर लेता है। जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो राम और शोभनी ब्रह्मचारी बड़े प्रसन्न हुए। (०१ अगस्त १९८७, अमृतसर)

## माता का वैष्णवी रूप

जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान, विज्ञान विवके जब चरित्र के शरा सिापित हो जाता है ता वह राष्ट्र अपनी पराकाष्ठा

पर चला जाता है। ऋषि ने जब यह वर्णन कराया तो उन्होने एक प्रश्न यह किया कि-महाराज! यहाँ वेद का वाक्य कहता है कि मातृ ब्रह्मः वृतं देवः। हे प्रभु! आपने जो हमें वेद का पठन-पाठन कराया हे यह भी इसमे आया हे कि माता का नाम विष्णु है तो माता विष्णु कैसे कहलाती है? ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि-वह माता विष्णु कहलाती है, जो अपने कर्तव्य का पालन कीती हैं यहाँ कर्तव्य किसे कहते है।, माता को ममता, मोह में परिणीत न रहना, अपने कर्तव्य का पालन करना है। जैसे माता के गर्भस्थल में एक शिशु पनप रहा है, हम जैसे शिशु पनप रहे है, यह उस माता का मातृत्व महालाया जाता है। माता अपने कर्तवय को अपनी मानवीयता में ग्रहण करना प्रारम्ी करती है, माता वेद मन्त्रो का उदगीत गाना प्रारम्भ करती है। कि मुझे वेद ने विष्णु कहा है। मै विष्णु कैसे हू? क्योंकि विष्णु तो पालन करने वाले का नाम कहा जाता है। मै विष्णु कैसे बन सकती हू? वह अपने गर्भस्थ शिशु को शिक्षा देना प्रारम्भ करती है।

शोभनी ब्रह्मचारी और राम ने कहा कि -प्रभु! यह तो हमने जान लिया है कि माता का नाम भी विष्णु है, परन्तु वेद का मन्त्र कहता है कि विष्णुमयं वुतं सूर्याणी गच्छतम हे पभु! यह जो सूर्य है, यह वेद की आख्यिका में विष्णु के रूप को धारण कर रहा है। सूर्य को विष्णु क्यो कहा जाता है, उस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि- हम राम! हे ऋषि कुमार! हे ब्रह्मव्रचाः! सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है तो यह अपने प्रकाश को लेकर संसार को प्रकाशित करता हैं द्यौ से ऊर्ज्वा लेता है और उसी ऊर्ज्वा को बिखेर देता हे। यह संसार इसे अपने में ग्रहण करता है। सूर्य महान है, वह पालन करता है। तेजोमयी को अपने में धारण करके संसार को प्रकाशमयी बना देता हे, ऊर्ज्वा को प्रकृति-तत्वो में रत्त कर देता है। विष्णु का अभिप्रायः है जो पालन करता है। तो सूर्य हमारा विष्णु है। विष्णू अपने में महान बना हुआ। महर्षि। वशिष्ठ ने कहा कि- हे राम यह सूर्य जो विष्णु है, यह प्रकाश को देने वाला है, उत्पादन करने वाला है, यही मानव को कन्या याग में, देवीयाग में प्रेरित कराता है तो यह सूर्य विष्णु कहलाता है।

अन्तरिक्ष भी विष्णु है-जब ऋषि ने इस प्रकार विवेचना की तो वेद का अध्ययन करने वाले दोनो ब्रह्मचारियो ने कहा कि ‘‘ आपने जो वेद-मन्त्र अध्ययन के लिये दिया था उसमे एक और वाक्य आया हे कि अनतक्षिं ब्रह्मे वृते देवं वाचं लांकां वायु सम्भाविति वेद का मन्त्र यह कहता है कि विष्णु लांको का अधिपति कहलाता है। विष्णु इन लोंक-लोकान्तरो की प्रतिभा में रहता है, तो प्रभु इसे हम कैसे जाने? महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि-अन्तरिक्ष को विष्णु कहते है। क्योंकि यह नाना प्रकार के लोको का अधिपति कहलाता हैं यहाँ लोक-लोकान्तरो में गति करने वाला एक विष्णु-लोक भी होता है। जैसे इन्द्र लोक हे ऐसे ही एक विष्णु-मण्डल है जो नाना लोको मो अपने में धारण किये रहता हे। लोक-लोकान्तरो में विष्णु एक मण्डल हे जो गनधर्व और

स्वाति के मध्य में स्थिर रहता है, अरून्धती के अग्रणीय भाग में विद्यमान हे। विष्णु-मण्डल में नाना प्रकार का विज्ञान भी पनपता रहता है। विज्ञान अपनी आभाओ में रत्त रहता है। ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो राम और शोभनी दोनो मौन हो गये। (०२ अगस्त १९८७, अमृतसर)

विष्णु का वाहन गरूड़-महाराज विष्णु का वाहन गरूड़ माना गया हैं गरूड़ की कल्पना करना हमारे लिए असम्भव हो जाता है, परन्तु जब उसका वास्तविक स्वरूप हमारे समक्ष आना प्रारम्भ हो जाता है तो हम यह कहा करते हे कि वास्तव में उनके विज्ञान की उड़ान कितनी विशाल रही है। भगवान विष्णु महान और पवित्र कहलाये गये है। हमारे यहा विष्णु नाम परमात्मा का भी कहा गया हे। परन्तु सतयुग में विष्णु नाम एक उपाधि को प्रदान किया जाता थां। गरूड़ उसका वाहन रहता था। जेसे परमपिता परमात्मा को, एक चेतना को, एक सर्वव्यापक को विष्णु कहा जाता है। परन्तु जहाँ में यह कल्पना करने लगता हू कि ऐसे विष्णु का वाहन क्या है तो उनका ज्ञान स्वरूप होना ही है। क्यांकि गरूड़ नाम ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को कहा जाता है। गरूड़ का अभिप्रायः क्या है हमारे यहाँ दर्शनो और वेद मन्त्रो मे गरूड़ की बड़ी मीमांसा आती है। उनकी माता उदीची प्रधाकृतम मानी जाती है। गरूड़, विष्णु के यहाँ बड़े वैज्ञानिक को कहा जाता है। गरूड़ की उड़ान धुरव-मण्डल से लेकर जेठाय-नक्षत्र और आकाश गंगा तक रही है।(२८ अकतूबर १९७०, गोहावटी)

## ब्रह्मवेता

भगवान राम जब विद्यालय में अध्ययन कररहे थे तो वह प्रातःकालीन याग करते थे। याग करने के पश्चात विज्ञान की तरंगो को जानने लगते थे, क्योंकि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज महान वैज्ञानिक और ब्रह्मवेत्ता थे। ब्रह्मवेत्ता वही होता है जो आध्यात्मिक-विज्ञान के मार्ग से हो करके ब्रह्म में प्रवेश करता है, ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाता है, वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। हमारे यहाँ ब्रह्मवेत्ता भी दो प्रकार के होते हैं : एक ब्रह्मवेत्ता वह जो जनता जनार्दन में ब्रह्म को, स्वीकार कर रहा है, एक वह ब्रह्मवेत्ता जो एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके समाधिष्ठ हो रहा है अथवा वह प्राण और मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है। (१ अक्टूबर १९८१, ग्राम नांगोला)

## राष्ट्र की एक संस्कृति

भगवान् राम ने महाराजा वशिष्ठ मुनि से एक ही वाक्य कहा था कि प्रभु! मैं अपने राष्ट्र को किस प्रकार पवित्र

बना सकता हूँ। उस समय महर्षि ने एक वाक्य कहा था कि जिस राजा के राष्ट्र में राजा की अपनी संस्कृति होती है, उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है, यदि तुम अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना चहते हो तो तुम्हारे राष्ट्र में एक संस्कृति होनी चाहिये।

संस्कृति उसको कहते हैं जिस वाणी में, जिस भाषा में यौगिकता हो, जो सदाचार को देने वाली हो, ऊँचे विचार देने वाली हो और जिसमें सब सम्पन्न विधाएँ हां, उसको संस्कृति कहते हैं। संस्कृति किसी व्यक्तिगत भाषा का नाम नहीं। संस्कृति उसको कहते हैं, जिसमें मानव का चरित्र बनता है, जिसमें मानव के दुर्गुण शान्त हों, जिसमें राष्ट्र पवित्र बनता हो, सदाचार की भावनाएँ आती हों, उसको राष्ट्र-संस्कृति कहते हैं, उसमें संसार का ज्ञान-विज्ञान भी हो। ऐसी संस्कृति वह कहलाती है जो हमारे ऋषियों की परम्परा है जिसमें ऋषियों का योगत्त्व भरा हुआ है। सबसे उत्तम संस्कृति वह है जो वेदों में हैं। वेदों से अनुकरण की हुई, मन्थन की हुई जो भाषा है, उसको भी संस्कृत कहते हैं।

## इन्द्र

जो राजा अपनी राष्ट्र संस्कृति से संसार को विजय कर लेता है वह एक सौ अश्वमेध यज्ञ करता है और यज्ञ करने के पश्चात् उसको इन्द्र की उपाधि प्रदान की जाती है। मुझे पूर्व काल में ऐसे राजा इन्द्रों को देखने का सौभाग्य मिला जिन्होंने एक सौ एक अश्वमेध यज्ञ किये। महाराजा शिव ने भी अश्वमेध यज्ञ किया। शिवपुरी में शिव राजा कहलाये इसी प्रकार इन्द्र ने यज्ञ किये।

हमारे यहाँ आत्मा को भी इन्द्र कहा गया है, क्योंकि यह नाना प्रकार के स्वरूप को धारण करती है, आत्मा में ज्ञान भी है विज्ञान भी। जब यह आत्मा इन्द्र को जान जाता है, तो इन्द्र बन जाता है आत्मा ही एक समय इन्द्र कहलाता है(१९ अक्टूबर १९६४, मोगा पंजाब)

## वाजपेयी याग की विवेचना

भगवान् राम की वह विशेषताएँ जो प्रायः उनके बाल्यकाल में मनोनीतता में प्रगट होती रहती थीं। विद्यालय में माता ब्रह्मचारी को महान् बनाने का उपदेश दे रही है, आचार्यजन नाना प्रकार का जो क्रियाकलाप है, उस क्रिया-कलाप में उसको परिणित कर रहे हैं। भगवान् राम, लक्ष्मण, गार्हपथ्य ब्रह्मचारी और भी अनेक नाना ब्रह्मचारी उनके संग थे, वे सर्वत्र ऋषि-मुनियों का भ्रमण करके माता अरुन्धती के समीप आ पहुँचे।

माता अरुन्धती ने कहा ''ब्रह्मवाचो देवाः ब्रह्म वरूणाः' हे ब्रह्मचारी! तुमने कहाँ-कहाँ भ्रमण किया। तो एक ही कंठ से उन चारों ब्रह्मचारियों ने कहा कि हम राजाओं के यहाँ भी पहुँचे और ऋषि-मुनियों के समीप भी, हम विज्ञान की धाराओं में भी प्रायः रमण करते रहते हैं। देखो हमें बहुत सा अनुभव हुआ है। जीवन की धाराओं का अनुभव होना ही हमारे जीवन की एक सार्थकता कहलाती है।''

वह सायक्राल का समय था, रात्रि के काल में न्योदा में से कुछ मन्त्रों पर उच्चारण कराते हुए माता अरून्धती अपने कक्ष में और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने कक्ष में विद्यमान हो गये। परन्तु देखो अगला जो दिवस प्रातःकाल का आया, अपनी क्रियाओं से ब्रह्मचारी निवृत्त हो करके विद्यमान हो गये माता अरुन्धती और वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र विद्यालय में विद्यमान हैं। माता अरुन्धती ने ब्रह्मचारियों की पंक्ति लगाई। 'यागाम् ब्रह्मवाचो देवाः' वह याग करने के लिए तत्पर हुए, परन्तु उन्होंने सन्धि के काल में जैसे प्रातःकाल और रात्रि की दोनों की सन्धि होती है। ऐसे ही ब्रह्मचारियों ने अपने कक्ष में वह सन्धि और सन्ध्या-उपासना करने के पश्चात् अग्नि के समीप जा करके अग्निहोत्र करने लगे। एक ब्रह्मचारी यजमान बन गया अन्य होता, उद्गाता और अध्वर्यु बन गये, याग प्रारम्भ होने लगा। महर्षि विश्वामित्र भी उस पंक्ति में विद्यमान हैं।

विचार चल रहा है, याग के पश्चात् ब्रह्मचारियों का कुछ विचार-विनियम होता है। हमारे यहाँ एक परम्परा मानी गयी है कि जब अग्नि का चयन करता है ब्रह्मचारी तो प्रातः कालीन अग्नि का चयन करके आचार्य से कुछ प्रश्न करता है और प्रश्नों का उत्तर आचार्यजन देते हैं। जैसे माता अपने पुत्र को लोरियों का पान कराती हुई उसके श्रोत्रों में कुछ न कुछ उच्चारण करती रहती है, अपने उद्गार देती रहती है, जिससे बालक का अन्तःकरण पवित्र बनता रहता है, माता के उन उद्गारों से बाल्य की प्रतिभा का जन्म होता है। परन्तु वही विद्यालय में क्रियात्मकता में परिणित हो जाता है। तो विचार क्या? वहाँ राम, लक्ष्मण, गार्हपथ्य, सुकेता, श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी कबन्धी भी शिक्षा-अध्ययन कर रहे थे। ब्रह्मचारी कवन्धी, भगवान् राम, लक्ष्मण और भरत इन चारों ब्रह्मचारियों ने उपस्थित हो करके कहा कि ''भगवन्! यह वाजपेयी याग किसे कहते हैं? क्योंकि जहाँ नाना प्रकार के यागों का वर्णन आता है, वहाँ वैदिक-साहित्य में वाजपेयी याग का भी वर्णन आता है।''

तो भगवान् राम के इन शब्दों को पान करने वाले ऋषिवर वशिष्ठ ने कहा, ''हे राम! तुम वाजपेयी याग को क्यों जानना चाहते हो?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! हम इससे पूर्व जब यह रात्रि समाप्त हुई तो न्योदा में से कुछ मंत्रों का अध्ययन कर रहे थे और वह मन्त्र कह रहे थे 'वाचन्नमः वाचो वृत्तं यागः यागां भविते देवाः' यह न्योदा में से एक मन्त्र है और यह मन्त्र कहता है कि राजा और ब्रह्मचारियों को वाजपेयी याग करना चाहिये। तो भगवन्! यह वाजपेयी याग क्या है?'' तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि ''याग तो हम कहते हैं अग्निहोत्र को,

याग कहते हैं शुभकर्म को; परन्तु रहा वाजपेयी याग, प्रजा के सुखार्थ, उनके सुख के लिए, सुखद अनुभव करने के लिए सुखी और आनन्दवत बनाने के लिए हम याग करते रहते हैं। इसीलिए वाजपेयी याग का अभिप्रायः 'वाचा वाचा वाचन्नमः वाचन्ब्रह्मवाचा' जिससे वाणी पवित्र हो जाये, उसको हमारे यहाँ वाजपेयी याग कहते हैं, इससे हमारे समय का उपयोग हो जाये और उसमें हम देखो याग करते हुए अग्नि का चयन करते रहें और अपनी वाणी को पवित्र बनाते रहें। क्योंकि वाणी को पवित्र बनाना राष्ट्र और समाज के लिए बड़ा महान् महत्व का कार्य माना गया है।''

मेरी प्यारी माता को प्रायः वाजपेयी याग करना चाहिये। जब वह अपने बालक को लोरियों का पान कराती है तब भी, अपने बालक को सत्यवादी ब्रह्मचारी माता को बनाना है। यदि माता सत्यवादी पुत्र को नहीं बना सकती तो यह माता के पद की सूक्ष्मता होगी, यह उसकी धृष्टता का द्योतक है। महर्षि वशिष्ठ ने कहा, ''राम! मेरे विचार में तो एक पक्ष वाजपेयी याग का यह है द्वितीय जो वाजपेयी याग का पक्ष है, वह कहता है कि जब हम याग करते हैं तो याग को हिरण्याक्ष ले जाता है और हिरण्याक्ष उस याग को मेंघमंडल को परिणित करा देता है, या वृत्रासुर को उच्चारण कर दीजिये, वह वृत्रासुर में चला जाता है और वृत्रासुर उस याग की धीमी-धीमी वृष्टि कर सोम की वृष्टि कर देता है और वह जो सोम की वृष्टि है। उसके पश्चात वहाँ गऊ के बछड़े और बैल की बलि का वर्णन आता है। यह वर्णन शैली हमारे यहाँ परम्परागतों से चलती आयी है परन्तु जहाँ बलि का वर्णन है वहाँ बलि के बहुत से अभिप्रायः माने गये हैं। मैंने तुम्हें बहुत पुरातनकाल में बलि के नाना रूप, नाना गुरुत्त्व प्रगट किये थे। परन्तु बलि का अभिप्रायः यही है कि जो सोम की वृष्टि हुई है, उस सोम का हम परिश्रम से अपने पुरुषार्थ से सदुपयोग करें और जब उस सोम का सदुपयोग हो जायेगा तो यही बलि का वर्णन है। बलि का अभिप्रायः केवल इतना है कि पुरुषार्थ करना है, पुरुषार्थ का नामकरण बलि कहा जाता है।

त्रेता के काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती प्रायः यह विवेचना करते रहते थे और विवेचना का अभिप्रायः केवल यह बना कि सोम कहते हैं वृष्टि को, याग कहते हैं प्रतिका को जब याग करते हैं, उसका सुगन्ध रूप बन जाता है। और, जब उससे वृष्टि होती है, वह वृष्टि ही नाना प्रकार के व्यन्जनों को जन्म देती है, नाना वनस्पतियाँ उसी से पनप रही हैं।

## ब्रह्मचारियों की चर्चा

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज इस प्रकार की विवेचना करते रहते थे, यह विवेचना भी समाप्त हो गयी और देखो ब्रह्मचारी अपने-अपने कक्ष में जा पहुँचे। ब्रह्मचारी जब अपने-अपने कक्ष में जा पहुँचे तो सायक्राल के समय ब्रह्मचारियों का समूह विद्यमान हुआ। ब्रह्मचारियों में यज्ञदत्त ने कहा कि ''हे साधो! हे भरत! ये आज आचार्य ने हमें जो विवेचनाएँ प्रगट की थीं, इन गतियों की मैंने कई काल में योगियों से चर्चाएं की थीं। मेरे पिता योगेश्वर थे और वह यही गति धीमी धाराओं को वह बुद्धमंडल स्थली में ले जाते थे और सभी प्राणियों का वह यज्ञ के द्वारा दर्शन करते थे। गार्हपथ्य ने कहा कि जब मैं माता की लोरियों का पान करता तो मेरे जो पिता थे, नितांग संग रहते और वह शिक्षा देते रहते। तब मेरे जो पिता थे वह अपने पूर्वजों के जो शब्दों के साथ जो चित्र वायुमण्डल में गतियाँ कर रहे थे, उनका दिग्दर्शन करते रहते थे। बड़ा विचित्र ब्रह्मचारियों का समूह था, जो अपने-अपने अनुभव की और श्रवण की हुई चर्चा थीं, उनको वह चर्चा में ला रहे थे।'' भगवान् राम ने कहा कि ''मैंने एक समय अपने महापिता महाराजा दिलीप जी की गाथा को श्रवण किया। मेरे महापिता का नाम दिलीप था, जब वशिष्ठ और ऋषि-मुनियों के कथनानुसार वह राज्य को त्याग करके और नन्दिनी की सेवा करने लगे तो नन्दिनी के विचार और अपने विचारों का तारतम्य मिलाते थे। सिंहराज आता तो उसके विचारों में अपने विचारों की झड़ी लगाते रहते थे। तो हमारे पूर्वज हमारे महापिता कितने वैज्ञानिक और कितने आत्मीयता में रत्त रहे हैं। महाराजा दिलीप के जीवन में यह गाथा आती है,'' भगवान् राम ने कहा, ''यह गाथा आयी कब? जब नन्दिनी हिमालय की कन्दराओं में पहुँची तो वहाँ झरना झर रहा था, जल का स्रोत्र बह रहा था। वहाँ नन्दिनी जल का पान करने लगी। हमारे महापिता उस झरती हुई जलधारा को दृष्टिपात् करने लगे, इतने में सिहंराज ने आ करके नन्दिनी पर आक्रमण किया और नन्दिनी पर जैसे ही आक्रमण हुआ, महाराजा दिलीप ने यह दृष्टिपात किया, कि यह क्या हो रहा है? पूर्वज ने कहा, हे सिंहराज! यह नन्दिनी मेरी पूज्य है। इसके पूर्व तू मेरे प्राणों को हनन कर सकता है, नन्दिनी के प्राण उसके पश्चात् हनन हो सकते हैं। वह सिंहराज चिन्तन में लग गया, ऐसा लेखनीबद्ध कहती है। दिलीप जी के विचार कहते हैं कि उन्होंने 'लेखनं ब्रह्म वाचा:' वह (सिंहराज) चिन्तन में लग गये और विचार आया कि दिलीप जी को मैंने आहार कर लिया तो राष्ट्र का और हमारा कौन रक्षक रहेगा। ओहो! 'रक्षां भविते देवा:' पहले परम्परा के काल में सिंहराज की रक्षा करने वाला कौन है? प्राणीमात्र की रक्षा करने वाला राजा है, सिंहराज नन्दिनी को त्याग दिया और नन्दिनी को त्याग करके उसके भाव को महाराजा दिलीप जानते थे। बारह वर्ष तक उन्होंने

तप किया। उनकी जब तपस्या पूर्ण हो गयी, वशिष्ठ ने याग किया, शृंगी के द्वारा याग कराया तब देखो यहाँ रघु का जन्म हुआ।'' राम ब्रह्मचारियों में विद्यमान हो कर अपने पूर्वजों की गाथा का वर्णन कर रहे थे। इसको हम धेनुयाग कहते हैं, धेनुयाग राजा को करना चाहिये। धेनुयाग से समाज ऊँचा बनता है। ब्रह्मचारियों की सभा विसर्जित हुई।(२५ मई १९८४, ग्राम धनौरा)

## वास्तविक यज्ञ वेदी

एक समय भगवान् राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा, ''महाराज, संसार में वास्तविक यज्ञ वेदी क्या है?'' उन्होंने कहा कि ''संसार में वास्तविक यज्ञ वेदी तो यज्ञ करना है। भौतिक यज्ञ करना है उसके पश्चात् आत्मिक यज्ञ करना है। यज्ञ वेदी को अपनाना हमारा कर्त्तव्य है। हे राम। आज तुम्हें यज्ञ वेदी को अपना कर चलना है। तुम्हें अपने में सदाचार को अपनाना है और संसार को सदाचारी बना देना है। 'अहिंसा परमो धर्मः' की वेदी पर आ जाना है। जहाँ हिंसक व्यक्ति कोई न हो। इससे तुम्हारे राष्ट्र का कल्याण होगा, तुम्हारी यज्ञ वेदी की रक्षा होगी, तुम्हारी माता की रक्षा होगी, तुम्हारी संस्कृति की रक्षा होगी।'' (८ नवम्बर १९६३, सरोजनी नगर, नयी दिल्ली)

## कर्मों की गति

जब भगवान् राम महर्षि वशिष्ठ के चरणों में ओतप्रोत होते थे तो वे ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते थे, राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चा करते थे। वे यह कहा करते थे कि ''प्रभु! संसार ऊँचा बनना चाहिये मानव का व्यापक कर्म मानव को धर्म में ले जाना है और सक्रीर्ण कर्म मानव को पाप में ले जाता है।'' एक समय कर्मों के ऊपर विचार-विनिमय हो रहा था। भगवान् राम कहते हैं कि ''प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव जड़वत स्थिति को भी प्राप्त रहता है अथवा नहीं?'' ऋषि वशिष्ठ कहते हैं, ''हे राम! मानव तो जड़वत स्थिति को सदैव प्राप्त होता रहता है, क्योंकि जितने प्रकृति के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं, उतना मानव जड़ता को प्राप्त होता रहता है, जड़ता आती रहती है, जितने चैतन्य के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं, परमात्मा के गुण प्रवेश कर जाते हैं, उतनी ही चैतन्यता प्राप्त होती रहती है,वह मोक्ष के मार्ग को जाता रहता है।'' यह विचार-विनिमय हो रहा था इतने में ही उनके आश्रम में एक कीड़ा क्रीडा करने लगा तो ऋषि से भगवान् राम कहते हैं कि ''भगवन्! हे ऋषिवर! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं यह जानना चाहता हूँ, यह जो कीड़ा आश्रम में क्रीड़ा

कर रहा है, इसने कौन सा ऐसा कर्म किया है?'' उन्होंने कहा, ''हे राम! जब से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है, सृष्टि का निर्माण हुआ है यह कीड़ा तीन समय इन्द्र की उपाधि को प्राप्त कर चुका है, परन्तु उसके पश्चात् भी यह आज कीड़ा है। कर्म का जो चक्र है वह इतना विचित्र है।'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! इसने कौन सा ऐसा कर्म किया?'' उन्होंने बताया ''१०१ अश्वमेध याग करने वाला इन्द्र बनता है। वह राजाओं का अधिराज बनता है। परन्तु राजा बन जाने के पश्चात् उसके अपने जीवन की जो धाराएं हैं, तरंगे हैं, उन तरंगों को जो महान् नहीं बना पाते। राष्ट्रीय क्षेत्र में संलग्न हो करके वह निम्न श्रेणी को प्राप्त होते हैं। जब यह उदान अपनी आत्मा को, कर्म के क्षेत्र को ले करके चलता है तो उस समय वह जो सक्रीर्णता है, वे अव्यापक जो कर्म हैं उसके साथ रहते हैं। उनके आधार पर निम्नता को प्राप्त होता हुआ वह आगे चल करके और भी निम्न बन जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वे कीड़े बन जाते हैं, दो मुखी बन जाते हैं और अपने-अपने आंगन में क्रीडा करते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि इन्द्र की उपाधि इनकी समाप्त हो जाती है। यदि वे इन्द्र के जीवन में अपने जीवन को यागमय बनाते रहे, याग करते रहे, तो उनकी इन्द्र की उपाधि निम्नता को न प्राप्त होकर ऊर्ध्वागति को प्राप्त हो जाती है, क्योंकि यागमय हमारा जीवन होना चाहिए।'' जब उन्होंने ऐसा कहा तो राम मौन हो गये। (१८ अप्रैल १९७७, अमृतसर)

## जिज्ञासाओं का समाधान

बाल्यकाल में जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा भगवान् राम अध्ययन कर रहे थे तो दोनों का अध्ययन, दोनों की प्रतिक्रियाएँ, दोनों का विचार-विनिमय होता रहता था। भगवान् राम एक समय एक वेद-मन्त्र का अध्ययन कर रहे थे। भगवान् राम सायक्राल में अध्ययन कर रहे थे और अध्ययन करते-करते वह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पहुँचे। वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि ''यह वेद-मन्त्र क्या कहता है? मैं इस अग्नि स्वरूप वाणी को जानना चाहता हूँ।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, ''वत्स राम! विराजो, प्रायः वैसे तो मध्यरात्रि में तुम्हारा आना अशोभनीय है, परन्तु जब तुम जिज्ञासु हो तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मैं अवश्य दूंगा।'' क्योंकि महर्षि वशिष्ठ महाराज ब्रह्मवेता थे, ब्रह्मनिष्ठ थे, मृत्यु को लांघ गये थे। भगवान् राम विराजमान् हो गये।

वशिष्ठ कहते हैं, ''हे राम। यह जो वाणी है, यह अग्नि है और वह कैसी अग्नि है? यह मानव को दाह कर देती है। मानव को चिन्तित कर देती है। अन्तःकरण को भस्मीभूत कर देती है। शक्ति के जो ज्ञान तन्तु हैं

उनको भी यह शोकातुर हो करके भस्म कर देती है। परन्तु इस अग्नि का जो द्वितीय स्वरूप है, वह मानव को प्रदीप्त बना देता है। यह मानव को पुरोहित बना देती है, मानव को योगेश्वर बना देती है और मानव को व्याख्याता बना देती है। हे राम! यही जो वाणी है जिससे पुरोहित गान गा रहा है। राष्ट्र का पुरोहित बना हुआ है और पराविद्या को अपनाता हुआ अपने को महान् बनाना चाहता है। यही वाणी है जो मधुर बन जाती है और मधुर बन करके 'अहिंसा परमोधर्मः' की प्रतिभा को मानव के जीवन में धारण करा देती है। हे राम! तुम्हें यह प्रतीत है कि जब गान गाते रहते हैं तो हमारे दोनों के गान में सिंह राज हमारी वैदिक ध्वनि को श्रवण करता रहता है। वह श्रवण क्यों कर रहा है क्योंकि हमारी वाणी में मधुरता आ गयी है, हमारी वाणी में 'अहिंसा परमोधर्म' आ गया है। हिंसक प्राणी भी हमारे इन शब्दों को पान कर रहा है, क्योंकि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वाणी का उद्गान ब्रह्मा की गाथा गाने से है। दोनों का जब समन्वय हो जाता है उसी काल में सिंहराज अपनी हिंसा को त्याग देता है क्योंकि हिंसा आत्मा का लक्षण नहीं है। हिंसा मानव की आभा की कृति कहलाती है। परन्तु जब हम विचारते हैं कि 'अहिंसा परमोधर्म' मानव का स्वभाविक गुण है, प्रतिभा है, उस काल में हमें प्रतीत होने लगता है कि यह वाणी वास्तव में विशाल अग्नि है, यह दूसरों की सूक्ष्म अग्नि को अपने में धारण कर लेती है।'' (३० अप्रैल १९८०, अमृतसर)

एक समय जब भगवान् राम ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न किया कि यह ''प्रभु की महिमा कैसी है? तो उस समय महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि प्रभु की महिमा को वही आत्मा जान सकता है, जो प्रभु की गोद में विराजमान हो जाये अन्यथा साधारण व्यक्ति का प्रभु की महिमा जानना असम्भव है।''(३० सितम्बर १९६४, जम्मू)

त्रेता के काल में भगवान् राम का इन प्राणों के ऊपर बड़ा आधिपत्य था। वशिष्ठ और माता अरुन्धती के चरणों में विद्यमान हो करके राम प्राणों का अध्ययन किया करते थे वह प्राणों में पार्थिव आभा वाला जो प्राणायाम है, उसे किया करते थे इसीलिए पृथ्वी के परमाणुओं का उन्हें बोध था और जहाँ पृथ्वी मानो उष्ण है, अन्नाद्य उत्पन्न करने वाली है, उस पृथ्वी में वह अन्नाद्य की उत्पत्ति के लिए प्रयास करते रहते थे।(१२ मार्च १९८६, बरनावा)

एक समय महर्षि वशिष्ठ और अरुन्धती दोनों विराजमान् थे और उनके मध्य में भगवान् राम आ गये। वह भगवान् राम को शिक्षा देने लगे। राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि ''प्रभु! मैं धर्म और अधर्म को जानना चाहता हूँ। उस समय उन्होंने एक वाक्य कहा कि मानव के द्वारा इन्द्रियों से जितनी कम तरंगें उत्पन्न होंगी उतना उसमें धर्म होगा।'' उन्होंने अनुसंधान करने के पश्चात् वर्णन कराया कि ''हे राम! जैसे एक मानव का

संस्कार होता है, संस्कार होने के पश्चात् पति-पत्नी की एक इच्छा होती है कि हम एक पुत्र उत्पन्न करें। दोनों की एक कामना होती है। जो पति और पत्नी होते हैं, उनसे एक पल में लगभग एक सहस्त्र तरंगे उत्पन्न होती हैं। परन्तु जब कोई ब्रह्मचारी का मेरी एक ब्रह्मचारिणी से नेत्रां का विवाद होता है, तो इतने समय में बिना पत्नी के दूसरी देवी और पुरुष के मन की प्रवृत्तियाँ चलायमान होती हैं, तो उसी कार्य के करने में उतने समय में ही एक सहस्त्र अधिक तरंगें उत्पन्न होती हैं और जिस काल में भोग होता है उस काल में तीन सहस्त्र तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं और यदि उस काल में उसे कोई दृष्टिपात कर लेता है तो इतने समय में चार हजार तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं।'' ऋषि ने कहा कि इसका नाम 'अधर्म' कहा जाता है। मानव का जितना शुभ कार्य होता है, सुदृष्टि होती है उतनी ही सूक्ष्म तरंगें होती हैं। जहाँ सूक्ष्म तरंगें होंगी और शुभ कर्मों में प्रवृत्ति होगी उतना ही 'धर्म' और जहाँ अधिक तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं वहाँ पाप है। बिना पाप के अधिक तरंगें उत्पन्न नहीं हो सकेंगी। जब मानव शान्त प्रभु का चिन्तन कर रहा है तो मानव के शरीर में जो आत्मा का मण्डल है, वह एक भोजन प्राप्त कर रहा है और जब प्राणी किसी दुर्गुण के लिये चलता है तो मानव के हृदय की गति प्रबल हो जाती है, जिसका कारण है कि वह 'अधर्म' के मार्ग पर चल दिया है।(२६ जुलाई १९६७, जोरबाग, नयी दिल्ली)

## वशिष्ठ मुनि आश्रम में श्वेतकेतु मुनि

एक समय भगवान् राम ने वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में श्वेतकेतु महाराज के दर्शन किये। उन्होंने राम को पाते ही वशिष्ठ मुनि से कहा, ''महाराज! राम की बुद्धि तीव्र क्यों है? इसका मूल कारण क्या है? क्योंकि राष्ट्रीयता में इतनी तीव्रता प्राप्त नहीं होती।'' राम बोले कि ''यह मेरी माता की देन है। माता ने मुझे प्रकाश दिया है।'' माता क्या प्रकाश देती थी? विचारने से भगवान् राम ने जब यह निर्णीत किया कि माता के गर्भ में जब वह विद्यमान थे तो माता एक महान प्रकाश देती थी और वह प्रकाश क्या था? स्वयं परिश्रम करके अन्न को प्राप्त करती थी और वह उस अन्न का पान करती थी जिससे माता के गर्भस्थल में जो बालक (राम) था, उसका निर्माण हो रहा था। क्योंकि मन की जो उत्पत्ति है, मन का जो निर्माण होता है, वह अन्न से होता है। 'अन्नादं भूतं ब्रह्मणे लोकः' क्योंकि प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया। माता कौशल्या अपने बालक के मन का निर्माण कर रही है, स्वयं कला कौशल कर रही है; उसके बदले जो अन्न आ रहा है उसे पान कर रही है। बालक का निर्माण हो रहा है, बालक पनप रहा है। माता के गर्भस्थल में

बालक का निर्माण हो जाता है, माता का गर्भाशय विश्वविद्यालय कहलाता है। उस विश्वविद्यालय में जो ब्रह्मचारी अध्ययन कर लेता है वह अध्ययन की शैली संसार के प्राणियों से प्राप्त नहीं होती।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि ''यह इसकी माता की देन है। जब वे संसार में आये और माता के गर्भ से पृथक् हुए, तो माता लोरियों का पान करा रही है। त्याग और तपस्या का उपदेश दे रही है। हे बालक! तुझे महान् बनना है! हे बालक! तुझे राष्ट्र का नायक बनना है और उसमें भी तुझे ब्रह्मवेत्ता बनना है। ब्रह्मवेत्ता ऐसा कि यहाँ ऋषि-मुनि तेरे से शिक्षा लेने वाले बनें। माता की उपदेश-मंजरी चल रही है, इसी उपदेश के द्वारा ब्रह्मचारी माता की लोरियों में पनप रहा है। अपने जीवन को प्राप्त कर रहा है। माता कौशल्या यही चाहती थी कि मैं स्वयं परिश्रम करती हुई श्रम से इस बालक को अन्नाद्य प्राप्त कराऊँ। जिससे मेरा गर्भाशय पवित्र हो जाये।''

भगवान् राम ने ऋषि से कहा कि ''यह माता की देन है, जो माता ब्रह्म को जानने वाली ब्रह्मनिष्ठ कहलाने वाली है। षोडश कलाओं का ज्ञान मुझे माता ने गर्भाशय में परिणित करा दिया था।'' वे षोडश कलाएँ, जिनमें सबसे प्रथम यह छः दिशाओं की कलाएँ हैं, इसके पश्चात चार कलाएँ एक मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला, ध्राण कला है और एक वाणी 'अत्रि स्तन कला' यह भी कला कहलाती है। इसके पश्चात् हमारे यहाँ एक अग्नि कला कहलाती है, एक ऊर्ध्वा में द्यौ कला, अन्तरिक्ष कला और समद्र कला, पृथ्वी कला यह षोडश कलाएँ हमारे यहाँ विशेष कहलाती हैं। इनका माता कौशल्या ने अपने बालक को ऊर्ध्वा में पहुँचाने के लिए ज्ञान दिया था।(२९ सितम्बर १९८१, ग्र्राम धनौरा)

## वशिष्ठ आश्रम की आचार-संहिता

त्रेता के काल में एक समय पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि ''जाओ, तुम वशिष्ठ मुनि महाराज की आचार-संहिता को दृष्टिपात् करके आओ।'' तो पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पा करके आचार-संहिता को दृष्टिपात् करने के लिए हम ऋषि के आश्रम में पहुँचे और देखा वहाँ ऋषि और माता अरून्धती एक आसन पर विद्यमान हैं ब्रह्मचारियों को उपदेश दे रहे हैं? उनकी प्रातःकाल की जो आचार-संहिता है, वहाँ बाल्य प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व अपने जीवन की आचार-संहिता को बनाना प्रारम्भ करते। ब्रह्मचारियों का जब भोज्य हुआ तो जिस पंक्ति में राजा दशरथ के राजकुमार हैं, उसी पंक्ति में द्रव्यहीन प्राणियों के बाल्य भी हैं। एक पंक्ति में एक ही प्रकार का भोज्य है, उसे आनन्द से प्राप्त कर रहे हैं। तो यह आचार-संहिता आहारों की और वह

कैसा आहार था कि राजा दशरथ के यहाँ देखो जो कृषकों का अन्न था, कृषक जो भूमि में उद्योग कर रहा है, वह ब्रह्मचारियों के लिए प्रसन्नता से लिया जा रहा है। वह विद्यालय में भी अपनी आचार-क्रिया-कलापों में अपने अन्न को उत्पन्न करते रहते थे। उस अन्न को पान करके जब आचार्य और ब्रह्मचारी अपने में कहता 'चक्षु में शुन्धामि, प्राणोमे शुन्धामि' सब प्राण और हृदय-इन्द्रियाँ, सब पवित्र बनती चली जाती हैं। यह राष्ट्र का क्रिया-कलाप है। मुझे तो ऐसा स्मरण है कि ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मचारी थे, ओजस्वी और ब्रह्मवेत्ता थे उनकी पत्नी अरुन्धती ब्रह्मचारिणी, ब्रह्म का उद्घोष करने वाली थीं।

अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आदेशानुसार जब मैंने आचार-संहिता को दृष्टिपात किया तो रात्रिकाल में वहीं वाटिका में विद्यमान हो करके दृष्टिपात किया कि ब्रह्मचारी अपने कक्ष में विद्यमान हो गये हैं। अध्ययन करने के पश्चात् निद्रा की गोद में चले गये और माता अरुन्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में ब्रह्म की चर्चा करने लगे। वह ब्रह्म का उद्गीत गा रहे हैं। माता अरुन्धती कहती हैं, ''भगवन्! इन ब्रह्मचारियों को हम सुयोग्य कैसे बना सकते हैं?'' वशिष्ठ कहते हैं, ''देवी! हमारा सुयोग्य बन जाना ही, ब्रह्मचारियों का सुयोग्य बन जाना है। यदि हमारा जीवन सुयोग्य नहीं बनेगा तो हम ब्रह्मचारियों को सुयोग्य नहीं बना सकते। हम ब्रह्मचारियों को महान् नहीं बना सकते। इसी प्रकार की चर्चा करते-करते वह लोक-लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगे और दोनों की प्रतियोगिता होने लगी।'' अरुन्धती कहती कि ''महाराज यह वशिष्ठमंडल क्या है?'' उन्होंने कहा, ''वशिष्ठमंडल अपने लोकों में अपनी माला में वशिष्ठ है, जैसे माला में सुमेरू होता है। इसी प्रकार यह सुमेरू कहलाता है,'' ''और महाराज अरुन्धतीमंडल क्या है?'' उन्होंने कहा, ''अरुन्धतीमंडल का उस वशिष्ठ-मंडल से समन्वय होता है और दोनों की छाया का, जब बालक माता के गर्भ में होता है तो देखो नाभि केन्द्र से उसका समन्वय होता है और ब्रह्मरन्ध्र में उसकी छाया आती है, तरंगें आती रहती हैं, जैसे सूर्य की किरणे होती हैं।'' इस प्रकार मैंने दोनों का सम्वाद दृष्टिपात किया। उन्होंने कहा, ''प्रभु! लोक-लोकान्तरों की माला कैसे बनाई जाती है?'' उन्होंने कहा, ''देवी! जैसे आचार्य ब्रह्मचारियों की माला बना लेता है और ब्रह्मचारियों के क्रिया-कलापों की माला बना करके एक सूत्र में पिरो देता है, ज्ञान के सूत्र में, इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों की माला बनी हुई होती है।'' यह वाक् शान्त करके दोनों अपने-अपने कक्ष में जा करके विद्यमान हो गये। तब मैं भी अपने आश्रम को चला आया।(१३ मार्च १९८६, लाक्षागृह बरनावा)

## वशिष्ठ द्वारा मनसा पाप का प्रायश्चित

एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान थे। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राम, शोभनी ब्रह्मचारी, सुकेता, जो विज्ञान में भारद्वाज के शिष्य कहलाते थे, ब्रह्मचारी कबन्धी, रोहणीकेतु और स्वाति, सब एक पंकित में विद्यमान होकर अपने में अध्ययन कर रहे थे तो वशिष्ठ जी ने लक्ष्मण को अनायास ही दंडित किया। दंडित इसलिये किया कि ऋषि के हृदय में एक मनसा पाप की प्रवृति उत्पन्न हुई जिसके प्रभाव से लक्ष्मण ने वेद के अध्ययन में स्वर और व्यंजन का प्रतिपादन नहीं किया। उनसे मनसा पाप हुआ, परन्तु लक्ष्मण ने उसे क्रियात्मक रूप में, साकार रूप में प्रकट किया। कई दिवस हो गये, वह पाठ उन्होंने लक्ष्मण से पुनः उच्चारण करवाया और उससे पूर्व यह कहा कि ''तुमने इसका अध्ययन नहीं किया। लक्ष्मण ने कहा कि नहीं, भगवन्! मैंने किया है।'' जब वह अध्ययन करवाने लगे तो वेद का पाठ व्यंजनों के सहित था।

रात्रि के काल में वशिष्ठ मुनि महाराज अपनी पत्नी से बोले कि ''देवी! आज मेरे हृदय में मनसा पाप आया, इसका क्या कारण है? क्या तुमने मुझे कोई अन्नादि ऐसा तो नहीं दिया, जिससे मेरे हृदय में मनसा पाप आ जाये?'' अरुन्धती ने कहा कि ''नहीं, प्रभु! ऐसा नहीं है। आपके हृदय में कुवृत्ति, आपके तप में सूक्ष्मता आने से आयी है।'' आचार्यों की वृत्तियों में तपश्चर्या होनी चाहिये। ब्रह्मचारियों के मध्य में मनसा पाठ कराया जाना चाहिये। महर्षि ने छः माह तक मौन रहकर, ब्रह्म का चिन्तन करते हुए उसका प्रायश्चित किया। देखो, मौन रह करके, वाणी से अन्तर्मुखी हो करके प्रभु का चिन्तन करने से प्रायश्चित होता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने छः माह तक तप किया। एक वेद-मन्त्र होता है, जिसको ऋणीता मन्त्र कहते हैं। उस ऋणीता मन्त्र के द्वारा हम प्रभु के प्ररति अपनी अन्तरात्मा की वार्ता को अपनी ध्वनियों से ध्वनित करते रहें। उस वेद-मन्त्र का पठन-पाठन करने के पश्चात् उन्होंने अपने को तपोमय बनाया। उसके पश्चात् ब्रह्मचारियों की पंक्ति में विद्यमान हो करके पुनः से वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन कराया।(२ अगस्त १९८७, अमृतसर)

ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज एक वर्ष में छः माह तो वनस्पतियों का, पत्तों का आहार करते। महर्षि उन्हीं, वशिष्ठ महाराज ने भगवान् राम को अपने चरणों में विराजमान् कराकर विश्व का अधिपति बनाया और संसार में शान्ति को स्थापित किया।(२४ अप्रैल १९६५, रामकृष्ण पुरम्)

## वशिष्ठ आश्रम में भारद्वाज ऋषि

राम का प्रातःकाल का क्रियाकलाप बड़ा विचित्र था। प्रातःकालीन अपनी सारी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त होकर, अन्तर्मुखी होकर प्रभु में ध्यानावस्थित होना उनका नित्यप्रति का क्रियाकलाप था। शोभनी ब्रह्मचारी भी विष्णु की याचना करते हुए वेद का प्रातःकालीन अध्ययन करते थे। सभी ब्रह्मचारी विद्यालय में इसी प्रकार रत्त रहते थे। उनके यहाँ एक समय महर्षि भारद्वाज, महर्षि श्वेतकेतु और महर्षि पनपेतु मुनि महाराज का आगमन हुआ। ऋषियों एवं ब्रह्मचारियों ने उनका स्वागत किया। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि "तुम्हारे विद्यालय में जहाँ विद्या में गति है, संलग्नता है, ब्रह्मवर्चोसी है, यह सब तो होना चाहिये परन्तु विज्ञान भी होना चाहिये, क्योंकि विज्ञान अपने में अनूठा है।" उन्होंने कहा, "बहुत प्रिय!" महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने क्रियात्मक वेद-मन्त्रों के आधार पर यह सिद्ध किया कि तुम अहिल्या को जानो। हमारे वैदिक साहित्य में अहिल्या नाम रात्रि का है, अहिल्या नाम पृथ्वी का भी है। अहिल्या चन्द्रमा की कान्ति को भी कहते हैं। परन्तु अहिल्या का अभिप्रायः केवल इतना है कि 'अहिल्यां ब्रहे वृत्तम् प्रवाहः आहिल्यं ब्रह्मस्ताहः', अहिल्या ज्ञान-विज्ञान की प्रतीक है। जिससे ज्ञान-विज्ञान उपलब्ध होता है, उसी का नाम अहिल्या है।

भगवान् राम का घ्राण-इन्द्रिय पर बड़ा आधिपत्य रहता था। जब इन्द्रियों का एक-दूसरे पर आधिपत्य हो जाता है तो घ्राण-इन्द्रियों से पृथ्वी के परमाणुओं की सुगन्धि का मिलान करते हुए, उसके खनिज पदार्थों को अथवा उनमें कौन सा तत्त्व विद्यमान है, वह उसको जान लेता है। भगवान् राम में यह विशेषता थी कि वह पृथ्वी के रजों की सुगन्ध से ही यह निर्णय ले लेते थे कि पृथ्वी के गर्भ में में इतनी दूरी पर इतना खनिज है और इस भूमि पर इतना अन्न उत्पन्न हो सकता है।

भगवान् राम ने इस विद्या का अध्ययन बाल्यकाल में ही किया था। एक समय ब्रह्मचारी यज्ञदत्त, ब्रह्मचारी व्रेतकेतु, शोभनी और राम, यह चारों एकान्त स्थली में एक वेद-मन्त्र के ऊपर विचार कर रहे थे और वेद-मन्त्र कह रहा था कि 'अहिल्यं वृहे वरणाः सम्भवः वृत्ते घ्राणाः इन्द्रश्चं प्रवाह अश्वं देवः अश्वश्वति दिव्यः' इस वेद-मन्त्र का अध्ययन करते हुए यह विचार लिया कि अहिल्या पृथ्वी को कहते हैं और अहिल्या का समन्वय घ्राण-इन्द्रियों से रहता है। उन्होंने साधना की। ब्रह्मचर्य काल में उन्होंने इस प्रकार का अध्ययन किया और प्रत्येक इन्द्रियों पर जय करते हुए, विजय को प्राप्त होते हुए उन्होंने अपनी घ्राण-इन्द्रियों के ऊपर बल दिया। प्राण-शक्ति ऐसी एक सत्ता है, जब घ्राण-इन्द्रियों में प्राण और अपान दोनां का योगी मिलान करता है तो उसे

पृथ्वी की गन्ध से यह प्रतीत हो जाता है कि इस गन्ध में कौन सा खनिज अपनी पुकार कर रहा है, अपनी ध्वनि में ध्वनित हो रहा है। सब ब्रह्मचारी अपने में इस प्रकार अनुसन्धान करते रहते। ब्रह्मचारियों के मध्य में यह विषय उसी का होता है, जिसमें उसके संस्कार और उसकी प्रबलता का एक विशेष बल होता है।
मुझे ऐसा स्मरण आता है कि वह प्राणायाम भी करते थे। जिसके अन्तःकरण के चित्त में जो भी संस्कार होते थे उसके आधार पर वह विद्या को अपनाने के लिये तत्पर हो जाते थे। आचार्य ब्रह्मचारी को जब यह शिक्षा देता है तो दीक्षा में यह निर्णय करा देता है कि यह ब्रह्मचारी किस विद्या का अधिकारी है। यह ब्राह्मण है या क्षत्रिय है या वैश्य प्रवृत्ति का है। चारों वर्णों का निर्माण आचार्य किया करता है। त्रेता के काल में विद्यालयों में आचार्य वेद के आधार पर यह निर्णय दिया करते थे। (२ अगस्त १९८७, अमृतसर)
महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज अपने शिष्यों को अपने अनुभव के वाक्य प्रकट करते थे, उद्गार देते थे। इन्होंने भगवान् राम जैसे शिक्षार्थी को संसार में बनाया। (८अगस्त १९७०, जोरबाग, नयी दिल्ली)

## वशिष्ठ की शिक्षा प्रणाली

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ प्रातःकालीन ब्रह्मविद्या का प्रसार होता, वेद-मन्त्रों के ऊपर अध्ययन होता। मध्य दिवस में विज्ञानवेत्ता विज्ञानशाला में विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते थे। वह क्रियात्मक शिक्षा थी। राम के काल में ऐसे-ऐसे यन्त्र विद्यमान थे जिनसे वह विज्ञानशाला में अनुसंधान करते थे। महर्षि भारद्वाज और ब्रह्मचारी कबन्धी के सहयोग से उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जिसे 'अहिल्या प्रतिभा वृत्त यन्त्र' कहते थे। पृथ्वी को अहिल्या कहते हैं। उस यन्त्र में यह विषेशता थी कि पृथ्वी के गर्भ में दो-दो, तीन-तीन योजन के निचले भाग से उसमें चित्र दृष्टिपात आने लगते थे। उन चित्रों को प्रायः क्रिया में लाना, खनिजों को जानना, कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है, कौन सी सूर्य की किरण कहाँ प्रवेश करके जल को किस प्रकार तपायमान कर रही है? उसी जल को जब वह अपने में ग्रहण करती है तो वाहनों में किस प्रकार का जल नृत्य करता रहता है? (१ अगस्त १९८७, अमृतसर)
भगवान् राम महर्षि वशिष्ठ मुनि के यहाँ विद्याध्ययन करते थे। वहाँ उन्हांने तीस वर्षों तक अध्ययन किया। महर्षि वशिष्ठ ने भगवान् राम के जीवन के, ब्रह्मचारियों के जीवन के, तीन भाग बनाये थे। सबसे प्रथम दस वर्षों के समय पर्यन्त उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं और शिष्टाचार में परिणित कराया। उन्होंने दस वर्षों तक धनुर्विद्या तथा दस वर्षों तक विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन किया था और उसको क्रियात्मक रूप में लाये।

त्रेता के काल में वशिष्ठ मुनि के आश्रम में विज्ञानशाला थी, जिसमें माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ दोनां अध्ययन कराते थे। लोक-लोकान्तरों के ऊपर उनका विशेष अध्ययन रहता था। वे पृथ्वी के ऊपर भी अनुसंधान करते थे। वे पृथ्वी के कणों को घ्राण के द्वारा, सुगन्ध के द्वारा भगवान् राम को यह निर्णय कराते कि अमुक स्थल पर भूमि के रज का स्वादन तीखा होता है, अग्रे होता है, किरकिरा होता है। नाना प्रकार के जो इस पृथ्वी के कणों का रसास्वादन होता है, उसको रसना के अग्र भाग पर निर्णय करा देते थे। उनका अध्ययन चलता रहता था कि मैं पृथ्वी को जानूँ। (१८ नवम्बर १९७३, खेतडी राजस्थान)

भगवान् राम जब वशिष्ठ के द्वारा अध्ययन करते थे तो प्रायः माता अरून्धती उन्हें नैतिक शिक्षा दिया करती थी और वह याग इत्यादियों में परिणित रहती, क्योंकि माता अरून्धती का जीवन भी बड़ा अद्वितीय रहा है। उनका जीवन ब्रह्मवादिनी का रहा है और वे लोक-लोकान्तरां की प्रायः चर्चा करती रही हैं और धनुर्याग में उनका बड़ा सहयोग रहा है। तो मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है कि उनका जीवन कितना महान् और पवित्रता में परिणित रहा है। तो देखो, वह 'अमृतम्' देखो, एक समय प्रातःकाल भगवान् राम, माता अरून्धती और वशिष्ठ, और भी ब्रह्मचारी, भ्रमण करते हुए, बेटा! भंयकर वनों में पर्वतों की छाया में पहुँचे। देखो गन्ध को ही धारण करते हुए भगवान् राम ने कहा कि यह जो पर्वतों की अनुद्यति है, अथवा इसकी तलहटी है, इसमें अमुक खनिज विद्यमान है। उन्होंने पृथ्वी के कणों की सुगन्ध से घ्राण के द्वारा उसको जाना। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है, उन्होंने, पृथ्वी के गर्भ में जाने का प्रयास किया। उन्होंने, बेटा! उस खनिज को जानने का प्रयास किया। तो मुनिवरो! वह खनिज, मानो कुछ दूरी पर जाकरके उन्हें प्राप्त हो गया। मेरे प्यारे! घ्राणेन्द्रियाँ अपने में बड़ी अद्वितीय क्रियाकलाप करती रहती हैं। माता अरून्धती ने कहा, ''राम! तुम बडे प्यारे सखा हो, मानो यह उत्तर दो कि तुमने यह कैसे जाना है?'' उन्होंने कहा, ''मातेश्वरी! 'घ्राणां भवे वृतप्रहिकृतिः' तुम्हें यह वेद-मन्त्र की आख्यिका स्मरण होगी और वेद-मन्त्र यह कहता है कि देखो, 'अमृतं ब्रहेजब्रहे' यह घ्राणेन्द्रियों का विषय है और घ्राण का समन्वय पृथ्वी से है और पृथ्वी में सर्वत्र खनिज विद्यमान रहते हैं। यह पंचमहाभौतिक जो गमन करने वाला अमृत है, वह उसमें नृत्त्य करता रहता है और वही हमारी घ्राण-इन्द्रियों में गमन करता रहता है। तो उसको हम इस प्राण के माध्यम से घ्राणेन्द्रियों से जानने का प्रयास करें।'' भगवान् राम के इन वाक्यों को श्रवण करके माता अरुन्धती बड़ी प्रसन्न हुई और उन्होंने कहा, ''धन्य है!'' उनके विद्यालय का यह प्रमुख छात्र अपने में अनुसंधान करता रहता था।(३ अक्टूबर १९९२, रामप्रस्थ, गाजियाबाद)

त्रेता के काल में जब भगवान् राम वशिष्ठ के द्वार पहुँचे। विद्यालय में जब प्रवेश कराये गये तो भगवान् राम

को वशिष्ठ ने प्रथम याग की प्रक्रिया वर्णित कराई। राम ने उस प्रक्रिया को ले करके, उसी याग को ले करके उन्होंने षोडश कलाएं जो मानव में, सुषुप्ति में रहती हैं उनको अपने जीवन में जागरूक करने का प्रयास किया। भगवान् राम बेटा! बारह कलाओं के जानने वाले कहलाते थे और वह बारह कलाएं, जिनको धारण करने वाले भगवान् राम ने राष्ट्र, समाज और अपने जीवन को महान् बनाने का प्रयास किया। (२० सितम्बर १९८९, ग्राम धनौरा़)

आज मुझे वह दृश्य स्मरण है, जब भगवान् राम गुरु के चरणों में ओतप्रोत होकरके उनके चरणों को छुआ करते थे और गुरु आशीर्वाद देता था ''आयुष्मान् भव! हे पुत्र! तुम आयुष्मान रहो! तुम्हारी आयु दीर्घ हो!'' जब यह सुन्दर आशीर्वाद दिया जाता है तो उस शिष्य की आयु दीर्घ होती है, गुरु शिष्य में विवेक होता है, दोनों में प्रीति होती है। बेटा! जब इस प्रकार की प्रीति होती है तो क्यों न यह समाज ऊँचा बनेगा। क्यों न यहाँ ब्रह्म-विद्या आयेगी। ब्रह्म-विद्या तब नहीं आती जब यहाँ अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया जाता। मेरे प्यारे महानन्द जी ने आधुनिक काल की चर्चा करते हुए कहा कि आज यहाँ गुरुओं का अपमान किया जाता है। जब गुरु अपने शिष्य का अपमान करता है या शिष्य गुरु का अपमान करता है तो यही अपमान वाले संस्कार अन्तरिक्ष में विराजमान हो जाते हैं और संसार में अपवित्रता आ जाती है।(१९ अक्टूबर १९६८, मोगामण्डी )

## दीक्षान्त उपदेश

जिस समय भगवान् राम अपने विद्यालय को त्यागने लगे, तो वहाँ दीक्षान्त उपदेश महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का हुआ। मैं आज वह विचार देने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ दीक्षान्त में विचार देता हुआ ऋषि क्या कहता है। भगवान् राम जब अपनी विद्याओं से उपरामता को प्राप्त हो गये तो उपरामता को प्राप्त होने के पश्चात् ऋषि ने कहा, ''हे राम! तुम्हारा विद्यालय का काल समाप्त हो गया है।'' उन्होंने कहा, ''प्रियतम! आओ, मैं अब तुम्हें दीक्षान्त उपदेश देना प्रारम्भ करूँगा। तुम्हें दीक्षान्त उपदेश को अपने में श्रवण करते हुए अपने क्रियाकलाप में वह लाना है। राम और श्वेताम् ऋषि महाराज 'श्वेताम् भावुस्ते:' '' मेरे पुत्रो! देखो कुछ ब्रह्मचारी और भी उनके साथ थे जिन्हें विद्यालय उस दिवस त्यागना था। वे सब ऋषि-चरणों में ओत-प्रोत हो गये। चरणों की वन्दना करते हुए, उन्होंने कहा, ''प्रभु! आज हम इस विद्यालय को त्याग रहे हैं। हमारा विद्या का काल उपरामता को प्राप्त हो गया है। तो हे प्रभु! हमें आज्ञा दीजिये कि हम क्या करें?'' माता

अरून्धती भी विद्यमान हैं, महर्षि वशिष्ठ भी विद्यमान हैं और एक आसन पर महर्षि विश्वामित्र भी विद्यमान है। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि लोमश और काकभुषुण्ड जी भी उनके आश्रम में आ पहुँचे। पाँचों ऋषि 'ब्रह्मवाचं ब्रह्मलोकां हृरण्यवृताः' अपने में आसन लगा करके विद्यमान हो गये।

## माता अरुन्धती का उपदेश

सबसे प्रथम दीक्षान्त में जो उपदेश हुआ उसमें माता अरुन्धती ने कहा, "हे ब्रह्मचारियो! आज तुम अपने इस विद्यालय को त्याग रहे हो। परन्तु इस विद्यालय में तुम्हें यह प्रतीत है कि तुमने कौन-कौन सी विद्या का अध्ययन किया है? संसार में तीन ही प्रकार की विद्या कहलाती हैं, ज्ञान, कर्म और उपासना। तीन ही विद्याएं हैं। इन तीनों प्रकार की विद्या में संसार बिन्दु से विकास में परिणित होता रहता है। यह तुम्हें प्रतीत है। ब्रह्मवेत्ताओं ने इसके ऊपर विचार-विनिमय किया है अन्वेषण किया है। ये जो वेद में त्रयी विद्या का वर्णन आता है। त्रयी विद्या कौन सी है जो मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित करती है, जो मानव को मानवीयता से चिन्तन में लगा देती है? आज वही त्रयी विद्या कहलाती है। इस त्रयी विद्या का अध्ययन प्रायः तुमने किया है, परन्तु देखो इन त्रयी विद्याओं में ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन आता है।"

माता अरुन्धती ने कहा कि "ज्ञान किसे कहते हैं। यह तुमने विचार लिया होगा कि जो तुम संसार में दृष्टिपात करते हो अथवा अपने नेत्रों से जो तुमने दृष्टिपात किया है, उसको जानने का नाम ही ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान की विवेचना करते हुए ऋषि कहता है कि मानव जो वाणी से उद्घोष करता रहता है और वाणी से सदैव सत्य का आश्रय ले करके, वह उद्घोष करता रहता है। वाणी की प्रतिभा में एक स्रोत्र बहता रहता है, इसको हम सत्य कहते हैं। वह आनन्द के मार्ग पर हमें ले जाता है। उसे हमारे यहाँ ज्ञान कहते हैं। जैसे एक मानव ने एक प्राणी को दृष्टिपात किया है। प्राणी को दृष्टिपात करके सोचा कि उसमें प्राण है और प्राण के ऊपर जब अन्वेषण करता है तो विचार आता है प्राण के साथ अग्नि विद्यमान है विचार करता है कि अग्नि के पश्चात् जल विद्यमान रहता है। जल के ऊपर जब अन्वेषण करता है तो पृथ्वी के कण उसे दृष्टिपात आने लगते हैं। जब वह दृष्टिपात करने लगता है पृथ्वी के कणों को तो उन कणों में इस ब्रह्माण्ड की रचना का विधान में निहित रहता है। तो जब ये इतनी वस्तुओं को दृष्टिपात कर लेता है, तो वह ज्ञान के सागर में चला जाता है। तो ज्ञान मानोविज्ञान ही कहलाता है।" वो जब ज्ञान में चला जाता है तो माता अरुन्धती कहती हैं, उसे हम ज्ञान कहते हैं, "उसे हम ज्ञान की प्रतिभा में परिणित करते हुए, हमारे यहाँ अध्ययन की परम्परा में सबसे

प्रथम ज्ञान आता है। ज्ञान को जब हम अपने में धारण करते हैं, तो हमारे हृदय में एक अनुभूति होने लगती है। एक प्रकाश की अनुभूति हो करके हम अपने में यह स्वीकार करलें की ज्ञान तो बड़ा अनन्तमयी है। प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करके उसके गर्भ में जाना ही ज्ञान है; परन्तु यह बड़ा आश्चर्य भरा विचित्रत्त्व माना गया है।''

माता अरुन्धती ने कहा कि ''मैं सदैव अध्ययन करती रही हूँ और इसके ऊपर हम गमन करते हैं, सबसे प्रथम ज्ञान और ज्ञान के पश्चात् क्रिया-कलाप अथवा कर्म आता है। हम कर्म किसे कहते हैं। हम दृष्टिपात करते हैं, जिनको हमने ज्ञानयुक्त हो करके जान लिया है, उसको क्रिया में लाना चाहते हैं। जैसे हमने सूर्यलोक को दृष्टिपात किया है, अब सूर्य को हम क्रिया में लाना चाहते हैं, अपने में धारण करना चाहते हैं, सूर्य कहाँ-कहा,ँ क्या-क्या क्रिया-कलाप कर रहा है? परन्तु वह सूर्य कैसा है, कैसी उसकी नाना प्रकार की किरणें हमारे समीप आ करके हमें क्रियात्मक बना देती हैं? प्रातःकाल सूर्य उदय हुआ है, उदय होकरके वह प्रकाश देता है और अपनी, क्रियाओं में रत्त होने लगता है। नाना प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त हो करके उसी में सायक्राल तक रत्त रहता है। सूर्य का जो अनुपम प्रकाश है वही तो हमें कर्मों में लाता है। उस सूर्य की किरणें चन्द्रमा को अमृत देती हैं, शीतलता देती हैं। वे ही सूर्य और चन्द्रमा दोनों की किरणें बन करके समुद्रों में प्रवेश करती हैं। समुद्रों में जब प्रवेश किया, तो वहाँ से जलों का उत्थान हो गया; वही सूर्य की किरणें द्यौलोक में पहुँचीं और द्यौ-मण्डल से प्रकाश ले करके मेंघों का उत्थान किया जिससे नाना प्रकार की वृष्टि हुई और पृथ्वी पर नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म हो गया। परन्तु उसको हम क्रिया में लाना चाहते हैं। उन्हें हम क्रिया में कैसे लाएं? अनुसन्धान करते हैं, विचार करते हैं कि हमें ज्ञान तो हो गया है, परन्तु ज्ञान के पश्चात् जब हम क्रियात्मक में उसको लाना प्रारम्भ करते हैं कि जैसे मेंघों का उत्थान हुआ। समुद्रों में बड़वानल नाम की अग्नि का प्रवेश हो गया है।''

मुझे स्मरण आता रहता है, भगवान् राम और गोस्वानभानुऋषि महाराज के पुत्र वाचकेतु दोनों को एक समय आचार्य ने समुद्र के तट पर प्रस्थान कराया और कहा, ''तुम अपने वाहन में विद्यमान हो करके समुद्र के तट पर चले जाओ।'' वेद का अध्ययन करने से यह प्रतीत हुआ कि समुद्र बड़वानल नाम की अग्नि हमें प्रतीत होती रहती है। उस बड़वानल नाम की अग्नि को क्रिया में लाने का प्रयास करो। भगवान् राम और ऋषि कुमार दोनों ने समुद्र के तट पर छः माह तक अध्ययन किया। अध्ययन करके पुनः अपने आश्रम में पहुँचे। वहाँ ऋषि ने जब यह प्रश्न किया कि ''क्या तुम उसको क्रियात्मक करके लाये?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! बड़वानल नाम की अग्नि जैसे मानव के शरीर में क्रोध से अग्नि का चलन आ जाता है, क्रोधाग्नि ज्ञान की

प्रतिभा को नष्ट कर देती है, इसी प्रकार जब समुद्रों में बड़वानल नाम की अग्नि का प्रहार होता है, बड़वानल नाम की अग्नि का चयन होने लगता है। वह देखो समुद्रों की शान्तता को और देखो समाज की स्थिरता को, वायुमंडल के वैभव को अपने में धारण कर लेती है। इसी प्रकार भगवन्! हमें तो कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है।'' जब मुनिवरो! देखो राम और ऋषि कुमार ने ये वाक्य प्रकट किये तो ऋषि प्रसन्न हो गये।

माता अरुन्धती ने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो! यह वाक्य तुम्हें स्मरण होगा; इसीलिए मानव को अपने जीवन को क्रियात्मक में लाने के लिये अनुसन्धान करना है, विचार करना है कि जो हमने ज्ञान पाया है, उस ज्ञान को हम क्रिया में लाना चाहते हैं, क्रिया में कैसे आता है? एक मानव ने यह दृष्टिपात किया कि हमने देखो योग को दृष्टिपात किया। योग है, अब योग को क्रियात्मक में लाना चाहते हैं। योग दो प्रकार के रूपों में विभक्त हो जाता है एक हठ के प्रति, हठ में योग विभक्त हो गया है; एक राज-योग में विभक्त हो गया। देखो साधना के क्षेत्र में प्रवेश मानव जब अपने को क्रिया में लाना प्रारम्भ करता है, तो दो विभागों में वे ही योग परिणित हो गया है, और विभक्त प्रतिक्रियाओं में हमारे यहाँ ध्यान-योग में इसे राज-योग कहते हैं, एक हठ योग में जैसे हठ-योग प्राणायाम का है। प्राण को कैसे हम सुसज्जित करना चाहते हैं और साधना में हम कैसे प्राण को लाना चाहते हैं। हम अपान और उदान का दोनां का समावेश करना चाहते हैं तो केसे हो सकता है? तो ये सब हठ योग प्रदीपन का हठ योग में परिणित होना कहा जाता है। परन्तु एक वह योग जिसमें शान्त मुद्रा में विद्यमान हैं, जो स्वाभाविक क्रिया-कलाप हो रहा है प्रकृति का, प्रकृति अपने में ध्रुवा-ऊर्ध्वा में गति कर रही हे; कहीं ध्रुवा में है, कहीं ऊर्ध्वा में है, जो स्वतः गति कर रही है। प्राण की इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को अपने में ध्यानावस्थित करने का नाम ध्यानयोग कहते है, तो मेरे पुत्रो! जब इसको मानव करता है तो इससे विवेक की प्रतिभा का जन्म होता है, विवेक जागरूक हो जाता है। जब मानव क्रियात्मक में अपने जीवन को ले जाता है।''

माता अरून्धती दीक्षान्त में अपने उपदेश दे रही थीं उच्चारण कर रही थीं, ''मानव को क्रिया में प्रवेश करना है। क्रिया में 'ब्रह्मवाचप्रवेलोकाम्' '' वेद की विदुषी कहती हैं, ''हे ब्रह्मचारियो! ब्रह्मवेत्ताओं ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं दीक्षान्त के ऊपर अपना उपदेश दूँ। परन्तु देखो द्वितीय हमारे यहाँ ज्ञान, कर्म और उपासना कहे जाते। उपासना का अभिप्रायः क्या है? उपासना हम किसे कहते हैं? परमात्मा की उपासना करना ही हमारे लिये सर्वोपरि कहा जाता है। उस उपासना का अभिप्रायः क्या है। हमें प्रत्येक वस्तु की उपासना करनी है। उपासना का अभिप्रायः यह है कि जैसी वस्तु है वैसा ही उच्चारण करना, यह उसकी उपासना कही जाती है। यदि जैसे कोई वस्तु है नहीं यदि हम अपनी विडम्बना से उसकी ऊँची-ऊँची कल्पना करते हैं, तो यह

उसकी पूजा नहीं कहलाती। पूजा का अभिप्रायः यह है कि जैसी कोई वस्तु है, उसको उसी रूप में स्वीकार करना वह उसकी पूजा का एक अप्रेत कहा जाता है।''

## उपासना में गान-विद्या

मुनिवरो, देखो मानव अग्नि की पूजा करना चाहता है, अग्नि को अपने में धारण करना चाहता है। अग्नि के तेजोमयी जीवन को अपने में ला करके वह गान गाना चाहता है। गान गाता रहता है, उपासना के द्वार पर पहुँचा, तो गान गाने लगा। अग्नि का गान गाता है प्राण के स्वरूप में, प्राण और अग्नि का, वायु और अग्नि का दोनां का परस्पर सम्बन्ध रहता है। जब वह गान गाने लगता है, गान गाता हुआ वाणी भी अग्नि का स्वरूप बन करके रहती है। अग्नि का जब हम सम्मिलान 'व्रतीलोकाम्' समन्वय करते हैं, तो दोनों का सूत्र बन करके गान रूप में सफलता को प्राप्त हो गया। गान भी कई प्रकार के होते हैं, उपासना काण्ड में हम जब गान गाते हैं तो गान में कहीं दीपावली-गान कहा जाता है, कहीं रूद्र-गान कहा जाता है, कहीं खेंचरी गान कहा जाता है। इसके भिन्न-भिन्न प्रकार माने गये हैं। जैसे गान के रूप में हमारे यहाँ माला पाठ का गान कहलाता है, जटा-पाठ, घन-पाठ ये सब गान कहलाते हैं। परन्तु जब गान के क्षेत्र में मानव प्रवेश करता है तो वह उपासना करता है। उपासना किसकी कर रहा है? जैसी जो वस्तु है, उसको वैसा ही स्वीकार करना, यह उसका गान कहा जाता है, यह उसकी उपासना कही जाती है। जैसे हम अग्नि की पूजा करना चाहते हैं तो हम अग्नि को अपने में धारण करना चाहते हैं, हम तेजोमयी बनना चाहते हैं। तो अग्नि के रूपों में हमें वो अग्नि स्वीकार करनी होगी।

अग्नि को जब हम ब्रह्म-अग्नि बना करके उसकी पूजा करते हैं, तो ब्रह्म के समीप जाते हैं, वेद के गान गाने लगते हैं, परमात्मा के समीप जा करके अपने को हम धन्य स्वीकार करते हैं।ः वही गान जब हम 'रूद्रो भागं ब्रह्मवाचहो देवम्' उस अग्नि को हम वैश्वानर नाम की अग्नि स्वीकार करते हैं, तो वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके हम विश्व को अपना मित्र बना लेते हैं। जब, मुनिवरो! देखो गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करते हैं,तो गृह को अपने वशीभूत करके हम गृह का शोधन कर देते हैं। वहीं गार्हपथ्य नाम की अग्नि का जब हम पूजन करना प्रारम्भ करते हैं, तो विद्यालयों को पवित्र बना देते हैं।

ब्रह्मचारी अपने में गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करके आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके उसकी पूजा करता है और पूजा के उपरान्त आचार्य उसे निगली हुई विद्या को प्रदान कर देता है। ये सब अग्नि की

पूजा कही जाती हैं। परन्तु अग्नि का अभिप्रायः यह है जो काष्ठों में रहने वाली अग्नि है, उस अग्नि से हम याग करते हैं। इसी अग्नि के द्वारा हम अपने को महान् बना करके पवित्र बना लेते हैं। उस अग्नि को हम जैसी अग्नि है हम उसी प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नियों को स्वीकार करने का नाम उसकी पूजा कही जाती है। इसलिये पूजा का अभिप्रायः यह है कि जैसी जो वस्तु है उसको वैसा ही स्वीकार करना है। जैसे एक मानव देखो जल की पूजा करना चाहता है, जल की पूजा करने का अभिप्रायः क्या है? वह प्राण वर्धक है, वह प्राणों को देने वाला है। रुग्ण हो रहा है, कंठ में जल नहीं रहा है, तो वो जल को अपने में पान करना चाहता है अपने में धारण करता है, जब वह पान करता है तो देखो उसके कंठ में मार्धुय-पान आ जाता है, उसके कंठ में एक शीतलता आ जाती है। वह अपने को स्वीकार करता है कि मैं शीतल बन गया हूँ। पवित्रता में अपने को पनपा रहा हूँ। अब जल को उसी रूप में स्वीकार करके उसे हम अपने प्रयोग में लाये, तो यह उसकी पूजा कही जाती है।

पूजा का अभिप्रायः मैंने तुम्हें कई काल में निर्णय किया था। परन्तु आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है जो सर्वत्र पूजाओं का वर्णन करूं। परन्तु देखो अभिप्राय यह है कि हम प्रत्येक मानव अपने माता-पिता की पूजा करना चाहते हैं तो माता-पिता अमरनाथ में परिणित करें उसको नाना प्रकार का सुख देने का प्रयास करें तो यह उसकी पूजा कही जाती है। पूजा का अभिप्रायः क्या है? सुख को देना ही उसकी पूजा है।

मुनिवरो! देखो परमात्मा की हम पूजा करना चाहते हैं, परमात्मा के हम समीप जाना चाहते हैं तो प्राण का हमें निरोध करना होगा। प्राण का निरोध करते-करते वह हमें ब्रह्म के समीप ले जाता है वह प्राणत्त्व, क्योंकि 'प्राणां भविते वहो स्वन्धना वाचान्नां सूत्रो भवितेस्वतो रूद्राः' क्योंकि प्राण एक सूत्र है संसार का, ब्रह्माण्ड का सूत्र बना हुआ है। हम उस सूत्र को अपने में सूत्रित करें तो वह, परमात्मा से हमारा मिलान करा सकता है।

माता अरून्धती ने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो! मैंने यह सूक्ष्म सा उपदेश तुम्हें दिया, यह दीक्षान्त है कि तुम ज्ञान, कर्म और उपासना में रत्त हो करके अपने में आचार्य की पूजा करो। आचार्य की पूजा का अभिप्रायः क्या है, जो आचार्य ने निगली हुई विद्या प्रदान की है अथवा तुम्हारे में भरण कर दी उस विद्या को अपने में स्वीकार करके और उस विद्या से अपने आचरणों, अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाना ही देखो आचार्य की पूजा कही जाती है। पूजा का अभिप्रायः यही है।'' माता अरून्धती यह उच्चारण करके मौन हो गयी। जब मौन हो गयी तो ब्रह्मचारी भी अपने में आश्चर्यचकित हो गये कि हमें तो मातेश्वरी ने ज्ञान देकर उपासना के ब्रह्माण्ड का स्पष्टीकरण कराया है। यह तो विशाल वन है जिस विशाल वन में हमें मातेश्वरी ने पहुँचाया है। हमें मातेश्वरी की पूजा करनी होगी। सबसे प्रथम उसी की पूजा में हमें रत्त रहना है, क्योंकि उसी के वाक्यों का

पान करके हमें तपस्वी बनना है, अपने को तपस्या में परिणित कर देना है। क्योंकि संसार का इतना वैभव है संसार की इतनी सक्रीर्णताएं हैं, उन्होंने सक्रीर्णता के ऊपर कोई अपना प्रकाश नहीं दिया है। उन्होंने ऊर्ध्वा में व्यापकता का एक उपदेश दिया है। ब्रह्मचारी मौन हो गये और मातेश्वरी माता अरून्धती भी मौन हो गयी। तो मुनिवरो! अब दीक्षान्त देने के लिए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उपस्थित हुए और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपने विचारों की भूमिका बनाई और भूमिका रख करके कहा कि "हे ब्रह्मचारियो! आज तुम्हें देवी अरून्धती ने दीक्षान्त दिया। जब से तुम विद्यालय में प्रवेश हुए हो, वह यागों का चयन कराती रही हैं। ब्रह्म-याग, विष्णु-याग, रुद्र-याग देखो और भी नाना प्रकार के याग जैसे अश्वमेधयाग है, वाजपेयी याग और देखो महा-अग्निष्टोम यागों के वर्णन में देवी लगी रहती थीं। जिस काल से तुमने विद्यालय को अपनाया है, विद्यालय की भूमि में तुमने अपने ज्ञान को उपार्जन करने का प्रयास किया है। माता अरून्धती यागों का चयन कराती रही हैं। परन्तु देखो आज मैं इसलिये उपस्थित होकर अपने विचार देने के लिए तत्पर हूँ, क्योंकि तुम इस विद्यालय को त्याग रहे हो और विद्यालय को जब ब्रह्मचारी त्यागता है तो ब्रह्मचारी को दीक्षान्त उपदेश दिया जाता है और जिसमें आचार्य अपना मन्तव्य प्रकट करा देता है। ब्रह्मचारी उसको अपने में धारण करके ब्रह्मवर्चोसी का पठन-पाठन करने लगता है। मुझे स्मरण आता रहता है। ब्रह्मचारियो! एक समय मैं भ्रमण करता हुआ सोमकेतु राजा के राष्ट्र में पहुँचा। वहाँ देखो केवल मुनि भारद्वाज अपने विद्यालय में दीक्षान्त उपदेश दे रहे थे। जब मैं राजा के द्वार पर पहुँचा, तो राजा ने कहा कि "महाराज! भारद्वाज गोत्र में आज दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है, और विद्यालय में मुझे निमन्त्रित किया है। हे प्रभु! आप भी मेरे साथ गमन कीजिये।" तो जब मेरा विद्यालय में, कजली वनों में प्रवेश हुआ तो वहाँ दीक्षान्त उपदेश चल रहा था। महर्षि सोमकेतु महाराज के पश्चात 'मगलम् प्रवहे लोकाम् वृभीव्रताम्' वशिष्ठ मुनि जब आसन पर उपस्थित हुए तो ऋषि-मुनियों ने उनका स्वागत किया। वशिष्ठ कहते हैं "जब मेरा स्वागत हुआ तो मैं मौन हो गया। देखो मैं बिना निमन्त्रण के जा पहुँचा। उसमें मेरे स्वागत का महत्त्व नहीं था, परन्तु जब दीक्षान्त उपदेश प्रारम्भ हुआ, तो भारद्वाज मुनि ने मेरा नामकरण उदित किया कि प्रभु! आप दीक्षान्त उपदेश प्रारम्भ कीजिये। तो वहाँ विज्ञान के ऊपर दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा था, दीक्षा दी जा रही थी। तब मैंने एक उपदेश दिया था उस काल में और यह कहा था कि हे ब्रह्मचारियो! तुम ब्रह्मचरिष्यामी बनो। जब आचार्य ने, मेरे से पूर्व उच्चारण करने वालों ने देखो, ब्रह्मचरिष्यामी का उपदेश दिया तो मुझे उसके ऊपर अपना कुछ वाक्य उच्चारण करना था। मैंने कहा, हे ब्रह्मचारियो! एक शब्द संसार में है जिसको कहते है 'ब्रह्मचरिष्यामी'। देखो 'ब्रह्म' और 'चरि' क्योंकि 'ब्रह्म' नाम परमपिता परमात्मा का, जो सर्वत्र सबका नियन्ता, निर्माण करने वाला है और

'चरि' 'ब्र्र्रह्मवाचे', देखो चरि से निर्माण करता है। निर्माण करने वाला ब्रह्म, हृदय को चरि से सर्वत्रता का निर्माण करता है। जितना यह ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, वो चाहे सूर्य-मण्डल है, चाहे द्यौ है, चाहे नाना प्रकार की आकाश गंगाएं हैं, आकाश गंगाओं में जितना भी लोक-लोकान्तरवाद है, जितना भी सूर्य, चन्द्र आदि लोक-लोकान्तर उनका जो निर्माण है, उसके निर्माण का यदि कोई स्रोत है तो वो चरि है परन्तु देखो उनको जो भिन्न-भिन्न रूपों में परिणित कर रहा है वो प्राण सूत्र कहलाता है, वो मनस्तत्त्व है, प्राण-सूत्र हे और प्राण-सूत्र भिन्न-भिन्न रूपों में उसको गति करा रहा है। परन्तु देखो जब मुझे यह भान हुआ जब मैंने अपने योगावस्थित हो करके इसको दृष्टिपात किया, तो मुझे दीक्षान्त उपदेश देने में बल प्राप्त हुआ और मैंने बलपूर्वक कहा हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है कि तुम ब्रह्मचरिष्यामी बनो। ब्रह्म की पूजा करने वाला अथवा ब्रह्म को क्रियात्मकता में लाने वाला हो जाता हे। परन्तु जब तक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, ब्रह्मचरिष्यामी नहीं बन पाता और तब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है। ब्रह्मवचोसी, ब्रह्मचरिष्यामी वेद का ऋषि कहता है तो मैंने कहा, हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें इस ब्रह्मचरिष्यामी को अपना करके विज्ञान के क्षेत्र में रमण करना है, क्योंकि विज्ञान का क्षेत्र भी ब्रह्मचरिष्यामी है। जितना भी अणुवाद, परमाणुवाद, जितना भी तरंगवाद को जानना है, उसको जानना सब चरि का सूत्र कहलाता है, वो चरि का रूप कहलाया जाता है। परन्तु वो जो परमाणु में गति दी जा रही है, वह जो गतिमान हो रहा है, वही प्राण-सूत्र उसमें पिरोया हुआ है। इसीलिए 'प्राणतम् ब्रह्मवाचे' इसी को तुम्हें जानना है कि यह प्राण भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिपात आता रहता है। कहीं यही प्राण ऊर्ध्व के रूप में कहीं ध्रुवा के रूप में, कहीं यही प्राण अक्षरों में है, जैसा वेद का सूत्र कहता है कि यही प्राण कहीं अपान में दृष्टिपात हो रहा है, कहीं उदान में दृष्टिपात हो रहा है, कहीं समान में, कहीं देखो नाग, देवदत्त, कूर्म, कृकल और धनंजय में दृष्टिपात आता रहता है। यह दस रूपों वाला जो प्राण है, यही प्रकृति के कणों को विभक्त कर देता है और विभक्त करके इसको तुम्हें जानना ही विज्ञान में प्रवेश करना है। जिसने दसों रूपों के प्राणों को जान लिया है वह ब्रहवर्चोसी कहलाता है। प्रकृति के चरि के कणों को विभाजन करने वाला 'प्रतो ब्रह्मवाचाह' मनस्तत्व माना गया है, परन्तु दोनों का समन्वय होते ही वह उसकी (प्राण) विभक्तता में परिणित हो जाता है, तो वही विज्ञान नाना प्रकार के विज्ञान के रूपों में ब्रह्माण्ड अणुओं में दृष्टिपात आने लगता है।''

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपना उपदेश देकर यह कहा कि ''तुम्हें वैज्ञानिक बनना है, प्रत्येक वस्तु को विज्ञान में लाना है जैसे आपो जल है, आपो ही माता के गर्भ में प्रवेश होते ही एक बिन्दु में एक शिशु प्रवेश होता है, देवताजन सर्वत्र शिशु को अपनाकर ही उसका निर्माण करते हैं और वह एक मनुष्य के रूप में

परिणित हो जाता है, वही नाना प्रकार की योनियों के रूपों में योनित हो जाता है। वही भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिपात आता रहता है।'' वशिष्ठ मुनि बोले कि ''तब मैंने यह उपदेश दिया और यही दीक्षान्त उपदेश मैं तुम्हें दे रहा हूँ कि तुम्हें वैज्ञानिक बनना है, तुम्हें विज्ञान के रूप में प्रवेश करना है, तो तुम्हें पृथ्वी से ऊपर उत्थान करते हुए चन्द्रलोक में, चन्द्रलोक से उत्थान करते हुए देखो बुध में, बुध से उत्थान करते हुए तुम मंगल में, मंगल से उत्थान करते हुए स्वाति में, स्वाति लोकों से उत्थान करते हुए तुम कृमित लोकों में, कृमित से उत्थान करते हुए महतिलोकों में, महतिलोकों से उत्थान करते हुए ब्रेतकेतु लोकों में, ब्रेतकेतु लोकों से उत्थान करते हुए सूर्य-लोकों में, और सूर्य-लोक से उत्थान करते हुए ध्रुव-लोक में तुम्हें गति करनी है।''
यह उपदेश दे करके महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में मौन हो गये और मौन होने से पूर्व पुनः एक वाक्य कहा ''तुम्हें अपने में ब्रह्मचरिष्यामी बन करके राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना है, क्योंकि यह उपदेश जो मैंने विज्ञान का दिया है, इस विज्ञान के साथ-साथ यदि तुम्हारा राष्ट्रीयकरण प्रजा का सुन्दर नहीं होगा, तो यह विज्ञान, यह लोकों में यातायात तुम्हारा निष्फल हो जायेगा, क्योंकि यह यातायात उस काल में प्रिय लगेगा जब तुम्हारे राष्ट्र में शान्तता का, चरित्रता का जन्म हो जाएगा और यदि राष्ट्र में तथा समाज में चरित्रवाद और प्रतिभा की महानता का जन्म नहीं होता तो इस विज्ञान को देखो ऊर्ध्वा में जाने से राष्ट्र-समाज को लाभप्रदता प्राप्त नहीं होगी। यह केवल विज्ञान का दुरुपयोग हो करके तुम्हारे यहाँ रक्त भरी क्रांति का अवशेष बन करके तुम्हारा समाज अग्नि के मुख में परिणित होता चला जायेगा।''
वशिष्ठ जी यह उच्चारण करके मौन हो गये और मौन हो करके माता अरून्धती ने कहा ''ब्रह्मचारियो! आज तुम्हें यह दीक्षान्त उपदेश दिया है इसके ऊपर तुम्हें विचार करना है। अपने जीवन के क्रिया-कलाप, जो तुमने विद्यालय में अपने में धारण किये हैं, उन्हें क्रिया में लाने के लिए तुम्हें आगे प्रयास करना है। देखो प्रातःकाल याग करना है, अपने राष्ट्र की प्रतिभा में याग को लाना है, परन्तु याग के पश्चात् वाजपेयी याग को यागों में परिणित करके तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाओ, जिससे याग की उत्पत्ति हो करके नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को जान करके तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाते रहो, ऐसी मेरी सदैव कामना रहती है। हमारी यह कामना है। अब तुम्हारा विद्यालय का पाठ समाप्त हो गया।''
जब भगवान् राम ने इन वाक्यों को श्रवण किया तो राम ने एक प्रश्न किया कि ''हे भगवन्! क्या हम वैज्ञानिक बनें या हम राष्ट्रीयवेत्ता बनें। हम कौन सी प्रतिभा को अपनाने के लिए तत्पर हों।'' महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि ''तुम्हें सर्वत्र रूपों में अपने को ले जाना है, क्योंकि यदि योग नहीं होगा तो तुम्हारा जीवन महान् नहीं बनेगा। यदि तुम्हारे में ब्रह्मचर्य नहीं होगा तो राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकते। यदि तुम्हारे में विज्ञान नहीं

होगा तो राष्ट्र में तुम गति नहीं कर सकोगे और यदि तुम्हारे यहाँ ज्ञान, कर्म और उपासना नहीं होगी तो विद्वत् समाज को जन्म नहीं दे सकोगे।''

महर्षि वशिष्ठ यह वाक्य उच्चारण करके पुनः मौन हो गये। परन्तु राम ने पुनः यह प्रश्न किया कि ''भगवन्! क्या राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी होना अनिवार्य है?'' महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, ''हे राम! यदि राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी नहीं रहेगा तो राजा का राष्ट्र आज नहीं तो कल विडम्बनामयी, अज्ञानमयी समाज बन करके अग्नि के मुख में चला जाएगा। परन्तु देखो बुद्धिजीवी प्राणी ही समाज को ऊँचा बनाते हैं, समय-समय पर राष्ट्र को ऊँची दिशा प्रदान कर देते हैं, और राष्ट्र में राजा और प्रजा दोनों मिल करके अश्वमेध याग में परिणित हो करके राष्ट्र को ऊँचा बनाते हैं।'' भगवान् राम ने कहा कि ''हे प्रभु! योग से राष्ट्र का क्या सम्बन्ध है?'' उन्होंने कहा, ''योग से तुम अपने में क्या अनुभव करते हो?'' उन्होंने कहा, ''हम योग से योगाभ्यास 'याम्भविते देवाः'।'' तो वशिष्ठ मुनि बोले कि ''योग से राष्ट्र का यह सम्बन्ध है कि जितने योगाचार्य होंगे, उतना ही राजा का राष्ट्र, स्वस्थ प्रिय और महान् बनेगा। यदि स्वास्थ्य ऊँचा नहीं रहेगा रुग्ण-समाज रहेगा, तो राजा के राष्ट्र में सदैव चिन्ता बनी रहेगी। राम! देखो, राजा के राष्ट्र में इसीलिये योगाभ्यासी प्राणी होने चाहियें, जो योगाभ्यासी प्राणी होते हैं, उनके द्वारा विद्यालय में ब्रह्मचारियों को प्राण की क्रियाओं में रत्त कराया जाता हैं, जिससे वह ब्रह्मचारी अपने में चरि का पालन कर सके, परमात्मा का चिन्तन कर सके। परन्तु देखो वह सुखद को अनुभव करता है और जब तक मानव का शरीर स्वस्थ रहता है, तब तक देखो वह अपने में आनन्द का भोग करता है।'' राम ने कहा, ''हे प्रभु! जैसा हमने बाल्यकाल से विद्यालय में युवाकाल तक याग किया है। आगे हमारे याग का क्या तात्पर्य बन जाता है?'' उन्होंने कहा, ''हे राम! देखो याग की जो प्रक्रियाएँ हैं, गृह में प्रवेश हो करके उन्हें क्रिया में लाना बहुत अनिवार्य है। जब पति-पत्नी गृह में याग करते हैं, वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कही जाती है, उस याग के करने से तुम्हारे हृदय में पवित्रता आ जाती है। राजा के राष्ट्र में प्रजा में महानता आती है, अग्नि के मुख में जब हम आहुति प्रदान करते हैं, तो वह अग्नि उसे निगल कर देवताओं को प्रदान कर देती है और देवता समय-समय पर वृष्टि करते हैं तो नाना प्रकार का अन्न, खाद्य और खनिज पदार्थों का जन्म हो जाता है। इसीलिए देखो राजा को, प्रजा को, सभी को याग करना चाहिये। क्योंकि संसार में जब माता के गर्भस्थल में शिशु प्रवेश होता है तो माता याग करती है, पिता याग करता हैं जब दोनां याग करते हैं 'स्वाहा' करते है, वही स्वाहा शिशु के रूप में बाल्य के रूप में आता है, वही बाल्य जब स्वाहा की प्रतिभा का गान गाता हुआ वैज्ञानिक बन करके पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करता है, नाना प्रकार के खनिजों को जान करके, धातु पिपाद को जान करके, वैज्ञानिक विज्ञान राष्ट्र का प्राण

कहलाता है, राष्ट्र को, प्रजा को, ऊँचा बनाने वाला वह विज्ञानमयी स्वतः क्रिया-कलाप कहलाया जाता है।'' जब वशिष्ठ ने इस प्रकार का उपदेश दिया तो राम मौन हो करके पुनः बोले कि ''प्रभु! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु देखो विज्ञान और लोकों में जाने का हमारा क्या तात्पर्य है? यदि हम समाज को ऊँचा बना लें, राष्ट्र को चरित्रवान् बना लें, महान् बना लें, तो अणु और परमाणुओं के मिलान की हमें क्या आवश्कता है?'' तब उन्होंने कहा कि ''हम अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाने के लिए, राष्ट्र को विकासदायक बनाने के लिए नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं का निर्माण करते हैं, यन्त्रों का निर्माण करते हैं, संग्राम होने लगें, या देखो एक राजा दूसरे पर आक्रमण करने लगे, या यदि आक्रमण भी न करे तो मानव का स्वभाव है ऊँची-ऊँची उड़ान उड़ना और उस ज्ञान-विज्ञान को अपने में क्रियात्मकता में लाने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है। उसकी प्रक्रिया में लगा रहता है, क्योंकि मानव सदैव नई नवीनता जो एक ज्ञान है, विज्ञान है, जो एक-रस रहने वाला है, उसको अपने में लाना चाहता है, अपने में समेटना चाहता है। समेट करके प्रभु के विज्ञान में रत्त रह करके प्रभु को प्राप्त होना चाहता है।'' वशिष्ठ मुनि महाराज के इस प्रकार का उपदेश देने पर दीक्षित ब्रह्मचारी मौन हो गये। (१५ सितम्बर १९८४, आकलपुर)

गुरू भी संसार में वह होता है जो सदाचारी बन करके अपने शिष्यों को सदाचारी बनाने का आदेश देता है। वह गुरू देखो वशिष्ठ कहलाता है और वह शिष्य राम कहलाता है जो गुरू के नियन्त्रण में रह कर उसके आदेशों का पालन करता है। मुनिवरो! मैं तो कहा करता हूँ कि हे भगवान्! तू राम जैसी आत्मा को उत्पन्न कर, जब राम जैसी आत्मा उत्पन्न हो जाएगी, तो वशिष्ठ मुनि भी कोई न कोई अवश्य उत्पन्न हो जाएगा। हे प्रभु! यदि तू संसार का कल्याण चाहता है, राष्ट्र का कल्याण चाहता है, प्रजा में शान्ति स्थापित करना चाहता है तो प्रभु! यहाँ राम जैसी आत्मा को उत्पन्न कर। जो अपने राष्ट्र के ऐश्वर्य को त्याग कर के हे प्रभु! ऋषियों के आपके बताए हुए आदेशों में संलग्न रहे।(१७ अप्रैल १९६४, जम्मू)

वशिष्ठ द्वारा दशरथ का मार्ग-दर्शन

एक समय राजा दशरथ ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न किया कि मैं राष्ट्र का पालन करूँ तो कैसे करूँ? उस समय उन्होंने कहा था कि कोई भी राष्ट्र का या किसी का पालन तब कर सकता है जब उसके द्वारा त्याग होगा और आत्मिक ज्ञान होगा।(१५ मई १९६२, मालवीय नगर, नयी दिल्ली)

## राष्ट्रीय चिन्तन

त्रेता काल में जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में एक सभा हुई। सभा में नाना ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्म जिज्ञासु राष्ट्र के राजर्षि भी विद्यमान थे। उसमें यह विचारा गया कि समाज में रूढ़ि आ गयी है। समाज में रूढ़ि नहीं आनी चाहिये, रूढ़ियों से एक मानव विलासिता का जीवन बना लेता है। विलासिता का जीवन मानव का नहीं बनना चाहिये, क्योंकि विलासिता के जीवन में रूढ़ियाँ बढ़ जाती हैं, अग्नि प्रचण्ड हो जाती है। यह अग्नि प्रचण्ड नही करनी चाहिये। सभा में ऋषि विचारों का याग और अग्निहोत्र का याग करने लगे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का जब याग समाप्त हो गया तो उनसे यह कहा कि समाज में विलासिता की रूढ़ि बन रही है और यह रूढ़ि नहीं रहनी चाहिये। इस रूढ़ि की समाप्ति के लिए प्रयत्न होना चाहिये, जिससे मानव भयक्रर अग्नि से शान्ति को प्राप्त हो जाए। विश्वामित्र को यह परामर्श दिया कि तुम अयोध्या में प्रवेश करो और रघुवंश के राजकुमारों को ऊँचा बनाओ, जिससे उनमें विलासिता की रूढ़ि नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि अयोध्या में भी विलासिता की रूढ़ि आ गयी थी। विलासिता की रूढ़ि को समाप्त करने के लिए, आत्मा की रूढ़ि को समाप्त करने के लिए, जीवन की रूढ़ि को समाप्त करने के लिए उन्होंने भगवान् राम को ऊँचा बनाने के लिए, अग्रसर करने के लिए विचार बनाया। महर्षि विश्वामित्र ने वन में याग की रचना की और याग से रूढ़िवाद को समाप्त करने लगे।(७ मार्च १९७९, बरनावा)

## विश्वामित्र द्वारा दशरथ-पुत्रों को शिक्षा

त्रेता के काल में वशिष्ठ मुनि महाराज ने और भी नाना ऋषि-मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र को यह आज्ञा दी कि राजकुमारों को धनुर्विद्या प्रदान करायें। तो दंडक वन में जाकर उन्होंने लगभग चार वर्ष तक उन्हें धनुर्याग का अध्ययन कराया, परीक्षा कराई। उसके पश्चात् ब्रह्मचारियों ने अपने गृह को प्रस्थान किया। महाराज विश्वामित्र, वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में प्रविष्ठ हुए। वशिष्ठ मुनि को उन्होंने बताया कि ‘‘अपने विद्यालय के ७१ ब्रह्मचारियों को मैंने धनुर्विद्या प्रदान की है ।’’ महात्मा वशिष्ठ ने कहा कि ‘‘हे विश्वामित्र! तुम्हें कुछ काल में इनकी परीक्षा लेनी है, मैं तुमसे एक बात जानना चहता हूँ कि अयोध्या नरेश के चारां पुत्रों ने कौन-कौन सी विद्या अध्ययन की है, उसे मुझे निर्णय कराइये।’’

महर्षि विश्वामित्र ने बताया कि ‘‘चारों राजकुमारों में राम और लक्ष्मण धनुर्विद्या में पारायण हैं परन्तु भरत और शत्रुघ्न दूसरों की आज्ञा पालन करने में तथा ब्रह्म-विद्या में विशेष हैं। भरत जी में एक विषेशता है कि

वह राष्ट्र का पालन करने में तथा त्याग में बड़े पारायण हैं। उनकी त्याग-प्रवृत्ति रहती है, मैंने उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया है कि वह संग्राम के योग्य नहीं है। शत्रुघ्न पृथ्वी के मापदण्ड में विशेष माने गये हैं।'' वशिष्ठ जी ने कहा, ''बहुत प्रियतम! क्या आपने उनके मस्तिष्कों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया है?'' उन्होंने कहा ''वेद का ऋषि ऐसा कहते हैं कि जिस विद्यालय में जो आचार्य हो उसे आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिये। आयुर्वेद में इस प्रकार की विद्या आती रहती है कि जो मस्तिष्क को दृष्टिपात करते हुए यह निर्णय दे देते हैं कि यह बाल्य इस योग्य है, इनका यह विषय बन सकता है।''

महर्षि विश्वामित्र राष्ट्रीय, धनुर्वेद और आयुर्वेद के क्रियाकलापों में बड़े पारायण थे। महर्षि वशिष्ठ का सबसे प्रथम विषय ब्रह्म का रहा है और त्याग पूर्वक, नम्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर अध्यापन का क्रियाकलाप करते हुए वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे। ब्रह्मवेत्ता वह होता है, जिसकी प्रवृत्ति ब्रह्म में स्थिर रहती है और वह ब्रह्म में अपने को स्वीकार करता है तथा उसे अभिमान नहीं रहता। उसे द्रव्यपति भी नहीं बनना है, क्योंकि द्रव्यों का स्वामी उसका सखा है। वह उस परमपिता परमात्मा के ही आश्रित बन जाता है। वह क्रोध से भी दूर रहते थे क्योंकि क्रोधाग्नि को जन्म देने वाला, उग्र-चित्त के मंडल का निर्माण करने वाला यह प्रभु है तो उसे क्रोध की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं तेजोमयी है, उग्रक्रिया वाला है। इस उग्रक्रिया ने ही तो संसार को जन्म दिया है, इसी से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है तो उग्रता की अब आवश्यकता नहीं है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का मार्ग श्रेष्ठ मार्ग था। वह ज्ञान और प्रयत्न में रत्त रहते थे। विश्वामित्र अपने में महान् थे और महर्षि वशिष्ठ अपने में महान्। माता अरुन्धती ऋषि की रक्षा करने वाली थी। वह वेदों का अध्ययन करती, तपस्या करती, स्वतः ब्रह्मवेत्ता बन करके लोक-लोकान्तरों को निहारती रहती थी, उनमें गमन करती थी। यह उनका क्रिया कलाप था।

यहाँ विद्यालय का अभिप्रायः यह होता है कि आचार्यों के संरक्षण में रहना, जहाँ शारीरिक और बौद्धिक, दोनों प्रकार की शिक्षाओं का प्रावधान होता है। शारीरिक और बौद्धिक दोनों को ले करके आध्यात्मिक उन्नति करना, यह ब्रह्मचर्य आश्रम में ही अपने में अपनेपन को अवधान करता रहा है। मुझे वह काल स्मरण है जब महर्षि विश्वामित्र के यहाँ राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण इन सब विद्याओं का अध्ययन करते थे। उन विद्याओं का अध्ययन करते हुए वह कहीं परमाणुवाद में चले जाते थे, कहीं अणुवाद में रत्त रहते थे, सर्वत्र विज्ञान की शिक्षा को प्रायः वह प्राप्त करते रहते। मुझे वह सब देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि विश्वामित्र के यहाँ ब्रह्मचारियों का एक वर्ष के पश्चात् परीक्षा, उनका एक 'व्रत्तम्' और दीक्षान्त विचार-विनिमय होता। अभिप्रायः यह है कि प्रत्येक वर्ष की दीक्षा ब्रह्मचारी को आचार्यों के मध्य में प्राप्त होती रही। उनके क्रियाकलाप उनकी

धाराएं बड़ी विचित्रता में सदैव रत्त रही हैं।(२० फरवरी १९९२, लाक्षागृह, बरनावा)
महात्मा विश्वामित्र चारों राजकुमारों सहित ब्रह्मचारियों को धनुर्याग का अभ्यास कराते रहते थे। अस्त्रों-शस्त्रों में अभ्यस्त होना, अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण करना और उनका प्रहार करना। अस्त्रों-शस्त्रों का जब अभ्यास कराया जाता है, तो देखो, वो महानता में परिणित होता है। विचार आता रहता है, उनके यहाँ ब्रह्मचारी प्रातःकालीन याग करते थे और याग करने के पश्चात् उनकी शिक्षा प्रारम्भ होती थी। वे शिक्षा क्या देते कि परमाणुओं का मिलान करना और अग्नि-तत्त्व को जानना और गुरुत्त्व को उसमें मिश्रण करना और तरल-तत्व की उसमें पुट लगाना। ये तीन परमाणु कहलाते हैं और उनकी देखो वायु में गति देना और आकाश में भ्रमण कराना, इस प्रकार की शिक्षा वे प्रायः प्रदान करते रहते। महात्मा विश्वामित्र राजकुमारों और ब्रह्मचारियों के सहित देखो, शिक्षा देना प्रारम्भ कर रहे थे और वे महात्मा वशिष्ट मुनि महाराज की आज्ञा से शिक्षापान कर रह थे। 'अमृतां भूः वर्णं ब्रह्मः' विद्यालय में जब भी धनुर्याग का अभ्यास कराया जाता है तो वहाँ ब्रह्मचारी होता है और, मुनिवरो! अस्त्रों-शस्त्रों का अभ्यास होता है और धर्मज्ञता धर्म और कर्त्तव्यवाद की देखो उन्हें दीक्षा प्रदान की जाती है।

## विजय-दशमी को वार्षिक दीक्षान्त-उपदेश

मुझे वो काल स्मरण आता रहता है कि महात्मा विश्वामित्र ब्रह्मचारियों का जब आश्रम में एक वर्ष सम्पन्न होता तो 'यशो सम्भवः' इस दिवस में, देखो उनका दीक्षांत उपदेश होता रहता। दीक्षा का अभिप्रायः यह है कि उन ब्रह्मचारियों को, मुनिवरो! उनके अस्त्रों-शस्त्रों का जो क्रियाकलाप था, उनका जो कौतुक था, उसे वे दृष्टिपात कराते रहते।
एक दिवस 'अमृताम्' माता अरून्धती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि भारद्वाज, महर्षि कादेप्त ऋषि महाराज आदि ऋषि-मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ और विश्वामित्र जी ने यह कहा कि ''भगवन्! मेरे ब्रह्मचारियों को अपना दीक्षांत उपदेश दीजिये।'' मेरे प्यारे! देखो वह 'ब्रह्मणावृत्तं देवत्वाम्' तो वे जब एकत्रित हुए तो, मुनिवरो! सबसे प्रथम माता अरुन्धती से कहा, ''हे माते! तुम इन ब्रह्मचारियों को अपना दीक्षांत-उपदेश दीजिये जो आपके 'मनं वृत्तम्' जो 'प्राणं भूः वर्त्तसः'।''
माता अरुन्धती उपस्थित हुई तो उन्होंने कहा, ''हे ब्रह्मचारियो! जो तुमने अब तक प्राप्त किया है, उसको तो हमने दृष्टिपात किया है। तुम अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या का अभ्यास कर रहे हो और तुम अभ्यस्त हो रहे हो।

मानो यह हमारे राष्ट्र का बड़ा सौभाग्य है और यह राष्ट्र का गौरव कहलाता है। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ता और विज्ञानवेत्ता विज्ञान के ब्रह्मचारियों को जो दीक्षा देता है, शिक्षा देता है उस राजा का और राष्ट्र का बड़ा सौभाग्य माना गया है। अपने में राष्ट्र का सौभाग्य स्वीकार करते हुए, मैं तुम्हें उपदेश क्या, मैं अपने उद्गार देना चाहती हूँ और उद्गार केवल यह है कि तुम्हारा जो मानवीय चिन्तन है, वो पवित्र होना चाहिये। जब ब्रह्मचारी का अथवा ब्रह्मछात्र का चिन्तन महान् बन जाता है तो उसकी आत्मा से उद्गारों की झड़ियाँ लग जाती हैं और आत्मा से जो उद्गारों का जन्म होता है, वही उद्गार देखो महान् बन करके और वही उद्गार, मुनिवरो! देखो, उसके जीवन की आगे भूमिका का निर्माण करते रहते हैं, क्योंकि वे उसकी भूमिका बनाते रहते हैं। इसी प्रकार, तुमने जो महर्षि विश्वामित्र से अस्त्रों-शस्त्रों को जाना है और भारद्वाज मुनि की कुछ सहायता भी तुमने ली है। महर्षि विश्वामित्र, क्योंकि ये पुरातन काल में राजा भी रहे, तपस्वी भी रहे, और ये अभिमानी भी रहे हैं और अब ब्रह्मवेत्ता भी बन गये, मानो यह हमारा सौभाग्य है, ऐसे महापुरुष जो देखो अपने में बड़े विचित्र रहे हैं, जिन्होंने बाल्यकाल में आचार्यों से शिक्षा प्राप्त की है और वे तुम्हें शिक्षा दे रहे हैं, यह बड़ा सौभाग्य है।''

मानो देखो, इस प्रकार, ऋषि की आभा को प्रकट करते हुए माता अरुन्धती ने कहा कि ''मेरा तो एक ही मन्तव्य रहा है कि मैं ब्रह्मचारियों को यही कहती रही हूँ विद्यालयों में भी और आज भी मेरा यही विचार है कि हम अपने मानवीयत्त्व को ऊँचा बनायें और अपने मानसिक जो विचार हैं, वो महान् पवित्र बन जायें, मानो देखो, उन पर हमारी विजय होनी चाहिये। जब हमारी विचारों पर विजय हो जाती है, तो मानो हम तपस्वी बन जाते हैं और बिना तपस्या के मानो देखो छात्र कदापि ऊँचा नहीं बनता। जब माता को माता की दृष्टि से पात किया जाता है। उसे नेत्रों में, मानो 'माता' को समाहित कर लेते हैं तो वह नेत्रों में सदैव माता ही माता दृष्टिपात आने लगती है और वह माता प्रकृति के रूप में विद्यमान हो जाती है। मानो वही प्रकृति है, जो चरी कहलाती है, जिसके गर्भ में नाना प्रकार का विज्ञान विद्यमान होता है। मानो खाद्यान्न भी हैं, खनिज भी हैं और भी नाना प्रकार की धाराओं की उपलब्धियाँ होती रहती हैं जो प्रायः तुम्हें क्रिया में लाने के लिये सदैव तत्पर रहती हैं। क्योंकि वह अमृतां 'भूः वर्णस्वाहा' मानो जो यह विज्ञानमयी यंत्र, तुमने एक 'अहिल्या-कृतिभा-यंत्र' का निर्माण किया है, जो निर्माण तुमने याग के माध्यम से किया है, याग के परमाणुओं के ऊपर तुम्हारा अध्ययन हुआ है और उस परमाणुवाद में तुमने यह सत्ता प्राप्त की होगी कि पृथ्वी के गर्भस्थल में कितनी दूरी पर कौन-सा खनिज है, कौन-सा खनिज गमन कर रहा है, जल को शक्तिशाली बनाने वाली जो ऊर्जा-शक्ति है, जो सूर्य से प्राप्त होती है, अमृत को देने वाली मानो देखो चन्द्रमा से ऊर्जा प्राप्त हो रही

है, तो वह सर्वत्र एक आभा में रमण कर रही है।''

विचार आता रहता है, माता अरुन्धती ने कहा ''हे ब्रह्मचारियो! यह तुम्हारा सौभाग्य है जो तुम इस आश्रम में ब्रह्मवेत्ता के समक्ष तुम अपनी विद्या का अध्ययन कर रहे हो, मानो यह 'अमृताम्' अहिल्या यन्त्रों का निर्माण किया है। इस निर्माण में वही है। मानो पृथ्वी के गर्भ को जानना है, और पृथ्वी के गर्भ को जो जानने वाला है, वह विज्ञानवेत्ता कहलाता है। हे ब्रह्मचारियो! दूसरा तुम्हारा जो कौतुक है, वह अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण है। कुछ इस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हैं, जो तुम्हें इस पृथ्वी-मण्डल पर अभ्यस्त के लिये नहीं प्राप्त होंगे। उसमें तुम्हें दूसरे मण्डलों में भी जाने की आवश्यकता होगी। वहाँ भी तुम्हें अपनी उड़ानें उड़नी हैं और वहाँ से भी विज्ञान को और यन्त्रों को जानने के पश्चात् तुम्हें पृथ्वी-मंडल पर आना है। ऐसा मेरा मंतव्य रहता है, मानो देखो तुम्हारा यह जीवन, इसी प्रकार तपोमय क्रियाकलापों में लगा रहेगा तो इसी का नाम तप कहा जाता है। इह तपस्या में तुम परिणित हो जाओ। तुम्हें यह प्रतीत है कि हमारे यहाँ जब देखो विष्णु-राष्ट्र की स्थापना हुई तो विष्णु महाराज अपने गरूड़ रूपी वाहन पर विद्यमान होकर लोक-लोकांतरों की यात्रा करते रहे हैं। लोक-लोकांतरों में जाना और वहाँ जो भी यन्त्र, विज्ञान प्राप्त होता मानो विज्ञान की धाराओं को अपने मस्तिष्क में वृत्त करते हुए वहाँ से यन्त्रों को इस पृथ्वी-मण्डल पर लाना, यह प्रायः राष्ट्र का एक कर्त्तव्य बन जाता था। राष्ट्र में इतना ऊँचा विज्ञान होना चाहिये, हमारे विद्यालय का विज्ञान इतना ऊँचा होना चाहिये, जिससे हमारे राष्ट्र का वैज्ञानिक, मानो देखो, वह नाना लोक-लोकांतरों की यात्रा में सफलता को प्राप्त कर सके। मेरा यह उपदेश है और मेरी यही कामना रहती है 'मानव ब्रह्मणे वृत्तं देवत्वां ब्रह्माः।''माता अरुन्धती ने कहा ''मानो देखो, अरुन्धती मण्डल के उपर मेरा अध्ययन रहा है। जब वशिष्ठ मुनि महाराज के चरणों में विद्यमान रहती, तो मुझे यह सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। इसीलिये मेरा नामोकरण भी अरुन्धती कहलाता है। मेरा अरुन्धती जो मण्डल है, वह और वशिष्ठ-मण्डल दोनों साथ-साथ गमन करते रहते हैं और मेरा उन दोनों के ऊपर अध्ययन रहा है। मैंने विशेषकर अरुन्धती-मण्डल के ऊपर अध्ययन किया है। अरुन्धती-मण्डल की धाराएँ आती रहती हैं और वे धाराएँ, मानो देखो, इस पृथ्वीमण्डल पर आती हैं और पृथ्वी-मण्डल पर आ करके, वे पृथ्वी के गर्भ में मानो देखो स्वर्ण का जो परमाणुवाद गमन कर रहा है उस पर उनकी छाया जब आवृत्त होती हैं तो उसमें एक वृत्तियों की धाराओं को प्रदान किया जाता है। तो यह अरुन्धती-मण्डल जब इसकी छाया चन्द्र-मण्डल पर जाती है, तो चन्द्रमा की कान्ति में मानो स्वर्णमयी धाराओं का जन्म हो जाता है। जब मानो अरुन्धती-मण्डल की जो कान्तियाँ हैं, जब यही कान्तियाँ, मंगल पर जाती हैं, तो वहाँ वैज्ञानिक, विज्ञान के परमाणुओं की उपलब्धि करता रहता है। यह अरुन्धती-मण्डल इतना विचित्र है कि जब माता के

गर्भस्थल में इसकी छाया जाती है, तो वहाँ बाल्य में बुद्धि की स्थापना कर देता है। बाल्य को बुद्धि आती है क्योंकि माँ देखो बालक के 'अंताम्' देखो लघु-मस्तिष्क में एक वृत्तिका-अरुणकेतु नाम की नाड़ी होती है उस नाड़ी का समन्वय, अरुन्धती-मंडल में जो धाराएं होती हैं, मानो उससे उसका समन्वय हो जाता है, तो विशेष बुद्धि उसे प्राप्त हो जाती है।''

विचार आता रहता है, माता अरुन्धती ने अपना दीक्षांत-उपदेश देते हुए कहा ''एक वर्ष के पश्चात मानो देखो, तुमने इस विजय की, अपनी प्रतीक तुमने अपने आश्रम में वर्णित की है। मेरा यह बड़ा सौभाग्य रहा है, मानो जो मैं तुम्हें दृष्टिपात कर रही हूँ, और तुम्हारा 'विजयं ब्रह्मः वृत्तं देवाः' तुम दसों इन्द्रियों के ऊपर संयम करो और विज्ञानवेत्ता बन करके अस्त्रों-शस्त्रों का निर्माण करो, निर्माण करके उनका अभ्यास करो, जिससे अयोध्या राष्ट्र ऊँचा बने और अयोध्या राष्ट्र के ऊँचे बनते ही सर्वत्र, पृथ्वी-मंडल एक पवित्रता की लहरों में परिणित हो जायेगा। इन तरंगों में, 'तरंगां भूः वर्णस्त्वाः' वह तरिंगत हो करके अपने में अपनेपन को प्राप्त करता रहेगा।''

माता अरुन्धती ने अपना उपदेश दे करके, महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए, माता अरुन्धती ने यह कहा कि ''गृह और विद्यालय तब तपोमय बनते हैं, जब माता-पिता देखो, जैसे मैं और महात्मा वशिष्ठ, हम दोनों, जब भी विद्यमान होते हैं तो विज्ञान की चर्चाएं करते रहते हैं, परमात्मा की सृष्टि को निहारते रहते हैं और परमात्मा की सृष्टि को निहारना 'देवत्वां ब्रह्मः' इस प्रकार माता-पिता एक-दूसरे में देवत्त्व की भावनाओं को लेकरके अपने गृह को पवित्र बनाते रहते हैं।'' तो माता अरून्धती ने कहा कि ''तुम्हारे विचार भी, जब तुम एकत्रित होकर विद्यमान हो जाओ तो आत्मा- परमात्मा को निहारते रहो और देखो परमात्मा के विज्ञान में चले जाओ और प्रकृतिवाद में रमण करते हुए तुम मनस्त्व की धारा को जान करके प्राण में समाहित हो जाओ और प्राण में समाहित हो करके तुम हृदय में ग्राही हो करके और हृदय से हृदय को मिलान करते हुए परमात्मा के हृदय में समाहित होना, मानो जानने के लिये तुम तत्पर हो जाओ।'' ऐसा, माता अरुन्धती ने अपना लघु विचार देते हुए कहा कि ''तुम 'तथास्तु अमृतम्'!''

मैं, धनुर्याग में चला गया। धनुर्याग का तो, बेटा, वन है, यहाँ तो प्रत्येक ऋषि का अपना-अपना मन्तव्य बड़ा विचित्रता में रहा है। परन्तु माता अरून्धति ने अपना दीक्षांत उपदेश दे करके और दीक्षा के लिये यह कहा। उन्होंने कहा '' 'दीक्षान्त ब्रह्मे', दीक्षा देने वाला तो आचार्य होता है, परन्तु जब वह ब्रह्मचारी विद्यालय से अवकाश लेता है, उस समय पूर्ण दीक्षांत-उपदेश दिया जाता है। यह प्रत्येक वर्ष में एक दीक्षा का उपदेश दिया जाता है कि तुम दीक्षित बनो और दीक्षित बन करके तुम अपने में छात्रत्त्व को धारण करो।'' यह दिवस

है अथवा यह जो माह है, यह प्रायः परमपिता परमात्मा ने इसलिये बनाया है कि बल का उपार्जन करना और विज्ञान की धाराओं का जानना, मानो देखो, 'अन्नां भू: वरणं ब्रह्मेः' इससे प्रत्येक मानव अपने-अपने उद्देश्य में रत्त होता है। कृषक, मुनिवरो! देखो, अपने में ही मानो देखो, लक्ष्मी का उपार्जन करता है, अन्न इत्यादि नवीन आता है, इसलिये यह 'दिवसं ब्रह्वा' यह बड़ा पवित्रतम् में वर्णित किया गया है। (२६ सितम्बर १९९०, रामप्रस्थ)

दीक्षान्त उपदेश के समय ब्रह्मचारी कबन्धी ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी रोहणीकेतु के सहित जब महर्षि भारद्वाज जी विश्वामित्र के आश्रम में पधारे तो उन्होंने उन्हें आसन दिया उनका आतिथ्य किया। आतिथ्य करने के पश्चात् नाना वृत्ति के ब्रह्मचारी नतमस्तक हो उनके चरणों को स्पर्श करने लगे तो महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि ''आपके उपदेश और क्रियाकलाप के लिए हम सदैव उत्सुक बने रहते हैं।'' महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ विशाल से विशाल यन्त्र थे और वह विशाल से विशाल ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते थे। उन्होंने कहा कि ''हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारा तो अन्तिम चरण है, वह आध्यात्मिकवाद है। देखो, भौतिक विज्ञान तो तुम्हारा महान् है और यह विज्ञान आध्यात्मिकवाद की एक भूमिका कहलाती है। सबसे प्रथम तुम अपने में विज्ञानवेत्ता बनो और अणु-परमाणु के ऊपर अन्वेषण करो।'' विश्वामित्र के आश्रम में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण भी होता रहा और उन वैज्ञानिक यन्त्रां में विद्यमान हो करके वह अपने में उड़ानें भी उड़ते रहते थे।(२१ फरवरी १९९१, लाक्षागृह बरनावा)

## विश्वामित्र आश्रम में भारद्वाज ऋषि

एक समय महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि भारद्वाज अपने शिष्यों सहित उनके आश्रम में आ पहुँचे। महर्षि भारद्वाज ने महर्षि विश्वामित्र तथा वशिष्ठ जी से कहा कि ''आपने अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या राम-लक्ष्मण तथा अन्य ब्रह्मचारियों को प्रदान की है, राम का इसमें कैसा क्रियाकलाप रहा है?'' उन्होंने कहा, ''राम तो पारायण हैं। लक्ष्मण भी पारायण हैं, क्योंकि वह अस्त्रों-शस्त्रों की प्रतिभा को जानते हैं। मैंने उन्हें एक सोमतिती नाम की रेखा का वर्णन कराया है, जो वेद के एक मन्त्र में आती है। 'सोमंब्रही वृतं रत्तः स्वाहा वेतु सम्भव ब्रहे वाचं प्रवाणम् अग्रं ब्रहे रेतः अस्वति।' '' महाराज वशिष्ठ ने कहा कि ''मैंने इस वेद-मन्त्र का अध्ययन कराया है। राम-लक्ष्मण ने उसको अच्छी प्रकार समझा है। इसका अध्ययन आपके विद्यालय में भी रहा है। किसी काल में उद्दालक गोत्र के

शिकामकेतु मुनि के यहाँ भी इस रेखा का अध्ययन हुआ था। इस रेखा में यह विशेषता है कि एक परिक्रमा रूप में यह रेखा बद्ध हो जाये तो (इस परिक्रमा के) आन्तरिक जगत् में रहने वाला मानव तो सुरक्षित रहता है और बाह्य से जो दुरिता भाव से आता है, उसका विनाश हो जाता है, वह इस रेखा के पास आते ही भस्म हो जाता है। ऐसी सोमतिती रेखा का मैंने वर्णन कराया है। उसको लक्ष्मण बड़ी पारायणता से जान गया है। शत्रुघ्न ने उसके ऊपर कोई विचार नहीं किया, उसका मन ही स्थिर नहीं रहा। भरत ने उस रेखा को कठिन जान कर त्याग दिया और भी ब्रह्मचारियों ने इसे अवेहलना युक्त कहा है। एक वर्णित नाम के ब्रह्मचारी ने इस रेखा को जानने का प्रयास किया है। वरुणास्त्र, अग्न्यास्त्र और ब्रह्मास्त्र में राम बड़े पारायण हो गये हैं।''

भारद्वाज जी ने कहा ''बहुत प्रिय। अब समय हो गया है देखो चार वर्षो तक राम और लक्ष्मण को ले जाओ, और इस रघुवंश का जहाँ तक राज्य हो, इसकी परिक्रमा को दृष्टिपात करो। कोई ऐसा प्राणी तो नहीं है जो राजा के राष्ट्र को घात पहुँचा रहा हो। तुम गुरु बनो, वे दोनों शिष्य की परम्परा से भ्रमण करें।'' विश्वामित्र जी ने कहा कि ''प्रभु! जब मैं धनुर्याग के लिये राजा दशरथ के यहाँ पहुँचा तो उन्होंने अपने में मोह प्रकट किया था राजा मोह करते हैं और इसका कारण कि बड़े प्रयत्न से इन शिशुओं का जन्म हुआ है। उन्हें मोह आता है, यह मोह राष्ट्र के लिये प्रिय नहीं है।'' महर्षि वशिष्ठ जी बोले कि ''वह तुम्हारी वार्ता स्वीकार तो कर लेते हैं।'' विश्वामित्र जी ने कहा कि ''प्रभु! राजा मोह करते हैं, राजलक्ष्मियाँ भी मोह करती हैं परन्तु राजा का मोह अधिक है। राजा के हृदय से कुछ ऐसा आभास मुझे प्रतीत हुआ है।'' उन्होंने कहा, ''कोई बात नहीं। एक स्थलि पर राष्ट्र है और एक स्थलि पर राजा का मोह है। राष्ट्र के प्राणी की रक्षा करने के लिये, उसमें अतातार्इ न रहना, राजा के मोह के समक्ष सर्वोपरि है। राजा का मोह कोई विशेष नहीं होता है।'' वशिष्ठ जी ने कहा, ''जाओ, तुम उन दोनों राजकुमारों को ले आओ।''

भारद्वाज मुनि बोले कि ''मैं भी गमन करता हूँ। मैं भी विज्ञानशाला में रत्त रहता हूँ। मैंने भी श्रवण किया है कि इस समय राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद छा गया है। जिस राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद आ जाता है, उसमें स्वार्थपरता आ जाती है और स्वार्थ होने पर वह आक्रमण कर सकता है। कुछ समय हुआ मैंने श्रवण किया है कि महाराजा सम्पाती के राष्ट्र को रावण ने अपना लिया है तथा सम्पाती और उनके विधाता गरुड को उन्होंने यन्त्रों के द्वारा अन्तरिक्ष में प्रवाहित कर दिया है। मैंने श्रवण किया है कि गरुड जी तो एक स्थान पर अपना निवास करने लगे हैं और सम्पाती समुद्र तट पर शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गये हैं। उसके राष्ट्र का पालन अक्षय कुमार करते हैं। इस अयोध्या राष्ट्र पर उसका आक्रमण न हो जाये।'' भारद्वाज जी ने यह कहा कि ''राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद है, क्योंकि जब राष्ट्र में शासक प्रिय नहीं होता तो वहाँ रूढ़िवाद पनपा

करता है। वह रूढ़िवाद समाज का, मानव का ह्रस कर देता है, रक्तभरी क्रान्ति को ला देता है। वह स्वार्थपरता में आ कर प्रियता-अप्रियता को नहीं विचारता है।'' महर्षि विश्वमित्र जी ने भी इस वाक्य को स्वीकार कर लिया।